.. Dnyaneshvari or Bhavarthadipika Chapter 18 ..

॥ ज्ञानेश्वरी भावार्थदीपिका अध्याय १८ ॥

॥ ॐ श्री परमात्मने नमः ॥
अध्याय अठरावा ॥
मोक्षसंन्यासयोगः ।

जयजय देव निर्मळ। निजजनाखिलमंगळ। जन्मजराजलदजाळ। प्रभंजन ॥ १॥
जयजय देव प्रबळ। विदळितामंगळकुळ। निगमागमद्रुमफळ। फलप्रद ॥ २॥
जयजय देव सकल। विगतविषयवत्सल। कलितकाळकौतूहल। कलातीत ॥ ३॥
जयजय देव निश्चळ। चलितचित्तपानतुंदिल। जगदुन्मीलनाविरल। केलिप्रिय ॥ ४॥
जयजय देव निष्कळ। स्फुरदमंदानंदबहळ। नित्यनिरस्ताखिलमळ। मूळभूत ॥ ५॥
जयजय देव स्वप्रभ। जगदंबुदगर्भनभ। भुवनोद्भवारंभस्तंभ। भवध्वंस ॥ ६॥
जयजय देव विशुद्ध। विदुदयोद्यानद्विरद। शमदम-मदनमदभेद। दयार्णव ॥ ७॥
जयजय देवैकरूप। अतिकृतकंदर्पसर्पदर्प। भक्तभावभुवनदीप। तापापह ॥ ८॥
जयजय देव अद्वितीय। परीणतोपरमैकप्रिय। निजजनजित भजनीय। मायागम्य ॥ ९॥
जयजय देव श्रीगुरो। अकल्पनाख्यकल्पतरो। स्वसंविद्द्रुमबीजप्ररो। हणावनी ॥ १०॥
हे काय एकैक ऐसैसें। नानापरीभाषावशें। स्तोत्र करूं तुजोद्देशें। निर्विशेषा ॥ ११॥
जिहीं विशेषणीं विशेषिजे। तें दृश्य नव्हे रूप तुझें। हें जाणें मी म्हणौनि लाजें। वानणा इहीं ॥ १२॥
परी मर्यादेचा सागरु। हा तंवचि तया डगरु। जंव न देखे सुधाकरु। उदया आला ॥ १३॥
सोमकांतु निजनिर्झरीं। चंद्रा अर्घ्यादिक न करी। तें तोचि अवधारीं। करवी कीं जी ॥ १४॥
नेणों कैसी वसंतसंगें। अवचितिया वृक्षाचीं अंगें। फुटती तैं हे तयांहि जोगें। धरणें नोहे ? ॥ १५॥
पद्मिनी रविकिरण। लाहे मग लाजें कवण ?। । कां जळें शिवतलें लवण। आंग भुले ॥ १६॥
तैसा तूतें जेथ मी स्मरें। तेथ मीपण मी विसरें। मग जाकळिला ढेंकरें। तृप्तु जैसा ॥ १७॥
मज तुवां जी केलें तैसें। माझें मीपण दवडूनि देशें। स्तुतिमिषेंच पां पिसें। बांधलें वाचे ॥ १८॥
ना येऱ्हवीं तरी आठवीं। राहोनि स्तुति जैं करावी। तैं गुणागुणिया धरावी। सरोभरी कीं ॥ १९॥
तरी तूं जी एकरसाचें लिंग। केवीं करूं गुणागुणीं विभाग। मोतीं फोडोनि सांधितां चांग। कीं तैसेंचि भलें ॥ २०॥
आणि बाप तूं माय। इहीं बोलीं ना स्तुति होय। डिंभोपाधिक आहे। विटाळु तेथें ॥ २१॥
जी जालेनि पाइकें आलें। तें गोसावीपण केवीं बोलें ?। ऐसें उपाधी उशिटलें। काय वर्णूं ॥ २२॥
जरी आत्मा तूं एकसरा। हेंही म्हणतां दातारा। तरी आंतुल तूं बाहेरा। घापतासी ॥ २३॥
म्हणौनि सत्यचि तुजलागीं। स्तुति न देखों जी जगीं। मौनावांचूनि लेणें आंगीं। सुसीना मा ॥ २४॥
स्तुति कांहीं न बोलणें। पूजा कांहीं न करणें। सन्निधी कांहीं न होणें। तुझ्या ठायीं ॥ २५॥
तरी जिंतलें जैसें भुली। पिसें आलापु घाली। तैसें वानूं तें माऊली। उपसाहावें तुवां ॥ २६॥
आतां गीतार्थाची मुक्तमुदी। लावीं माझिये वाग्वृद्धी। जे माने हे सभासदीं । सज्जनांच्या ॥ २७॥
तेथ म्हणितलें श्रीनिवृत्ती। नको हें पुढतपुढती। परीसीं लोहा घृष्टी किती। वेळवेळां कीजे गा ॥ २८॥

तंव विनवी ज्ञानदेवो। म्हणे हो कां जी पसावो। तरी अवधान देतु देवो। ग्रंथा आतां ॥ २९॥
जी गीतारत्नप्रासादाचा। कळसु अर्थचिंतामणीचा। सर्व गीतादर्शनाचा। पाढाऊं जो ॥ ३०॥
लोकीं तरी आथी ऐसें। जे दुरूनि कळसु दिसे। आणी भेटीचि हातवसे। देवतेची तिये ॥ ३१॥
तैसेंचि एथही आहे। जे एकेचि येणें अध्यायें। आघवाचि दृष्ट होये। गीतागमु हा ॥ ३२॥
मी कळसु याचि कारणें। अठरावा अध्यायो म्हणें। उवाइला बादरायणें। गीताप्रासादा ॥ ३३॥
नोहे कळसापरतें कांहीं। प्रासादीं काम नाहीं। तें सांगतसे गीता ही। संपलेपणें ॥ ३४॥
व्यासु सहजें सूत्री बळी। तेणें निगमरत्नाचळीं। उपनिषदार्थाची माळी-। माजीं खांडिली ॥ ३५॥
तेथ त्रिवर्गाचा अणुआरु। आडऊ निघाला जो अपारु। तो महाभारतप्राकारु। भोंवता केला ॥ ३६॥
माजीं आत्मज्ञानाचें एकवट। दळवाडें झाडूनि चोखट। घडिलें पार्थवैकुंठ-। संवाद कुसरी ॥ ३७॥
निवृत्तिसूत्र सोडवणिया। सर्व शास्त्रार्थ पुरवणिया। आवो साधिला मांडणिया। मोक्षरेखेचा ॥ ३८॥
ऐसेनि करितां उभारा। पंधरा अध्यायांत पंधरा। भूमि निर्वाळलिया पुरा। प्रासादु जाहला ॥ ३९॥
उपरी सोळावा अध्यायो। तो ग्रीवघंटेचा आवो। सप्तदशु तोचि ठावो। पडघाणिये ॥ ४०॥
तयाहीवरी अष्टादशु। तो अपैसा मांडला कळसु। उपरि गीतादिकीं व्यासु। ध्वजें लागला ॥ ४१॥
म्हणौनि मागील जे अध्याये। ते चढते भूमीचे आये। तयांचें पुरें दाविताहे। आपुल्या आंगीं ॥ ४२॥
जालया कामा नाहीं चोरी। ते कळसें होय उजरी। तेवीं अष्टादशु विवरी। साद्यंत गीता ॥ ४३॥
ऐसा व्यासें विंदाणियें। गीताप्रासादु सोडवणिये। आणूनि राखिले प्राणिये। नानापरी ॥ ४४॥
एक प्रदक्षिणा जपाचिया। बाहेरोनि करिती यया। एक ते श्रवणमिषें छाया। सेविती ययाची ॥ ४५॥
एक ते अवधानाचा पुरा। विडापाऊड भीतरां। घेऊनि रिघती गाभारां। अर्थज्ञानाच्या ॥ ४६॥
ते निजबोधें उराउरी। भेटती आत्मया श्रीहरी। परी मोक्षप्रासादीं सरी। सर्वांही आथी ॥ ४७॥
समर्थाचिये पंक्तिभोजनें। तळिल्या वरील्या एकचि पक्वान्नें। तेवीं श्रवणें अर्थें पठणें। मोक्षुचि लाभे ॥ ४८॥
ऐसा गीता वैष्णवप्रासादु। अठरावा अध्याय कळसु विशदु। म्यां म्हणितला हा भेदु। जाणोनियां ॥ ४९॥
आतां सप्तदशापाठीं ।अध्याय कैसेनि उठी। तो संबंधु सांगो दिठी। दिसे तैसा ॥ ५०॥
का गंगायमुना उदक। वोघबगें वेगळिक। दावी होऊनि एक। पाणीपणें ॥ ५१॥
न मोडितां दोन्ही आकार। घडिलें एक शरीर। हें अर्धनारी नटेश्वर-। रूपीं दिसें ॥ ५२॥
नाना वाढिली दिवसें। कळा बिंबीं पैसे। परी सिनानें लेवे जैसें। चंद्रीं नाहीं ॥ ५३॥
तैसीं सिनानीं चारीं पदें। श्लोक तो श्लोकावच्छेदें। अध्यावो अध्यायभेदें। गमे कीर ॥ ५४॥
परी प्रमेयाची उजरी। आनान रूप न धरी। नाना रत्नमणीं दोरी। एकचि जैसी ॥ ५५॥
मोतियें मिळोनि बहुवें। एकावळीचा पाडु आहे। परी शोभे रूप होये। एकचि तेथ ॥ ५६॥
फुलांफुलसरां लेख चढे। द्रुतीं दुजी अंगुळी न पडे। श्लोक अध्याय तेणें पाडें। जाणावे हे ॥ ५७॥
सात शतें श्लोक। अध्यायां अठरांचे लेख। परी देवो बोलिले एक। जें दुजें नाहीं ॥ ५८॥
आणि म्यांही न सांडूनि ते सोये। ग्रंथ व्यक्ति केली आहे। प्रस्तुत तेणें निर्वाहे। निरूपण आइका ॥ ५९॥
तरी सतरावा अध्यावो। पावतां पुरता ठावो। जें संपतां श्लोकीं देवो। बोलिले ऐसें ॥ ६०॥
अर्जुना ब्रह्मनामाच्याविखीं। बुद्धि सांडूनि आस्तिकीं। कर्मे कीजती तितुकीं। असंतें होतीं ॥ ६१॥
हा ऐकोनि देवाचा बोलु। अर्जुना आला डोलु। म्हणे कर्मनिष्ठां मळु। ठेविला देखों ॥ ६२॥
तो अज्ञानांधु तंव बापुडा। ईश्वरुचि न देखे एवढा। तेथ नामचि एक पुढां। कां सुझे तया ॥ ६३॥
आणि रजतमें दोन्हीं। गेलियावीण श्रद्धा सानी। ते कां लागे अभिधानीं। ब्रह्माचिये ? ॥ ६४॥

मग कोता खेंव देणें। वार्तेवरील धावणें। सांडी पडे खेळणें। नागिणीचें तें ॥ ६५॥
तैसीं कर्में दुवाडें। तयां जन्मांतराची कडे। दुर्मेळावे येवढे। कर्मामाजीं ॥ ६६॥
ना विपायें हें उजू होये। तरी ज्ञानाची योग्यता लाहे। येऱ्हवीं येणेंचि जाये। निरयालया ॥ ६७॥
कर्मीं हा ठायवरी। आहाती बहुवा अवसरी। आतां कर्मठां कैं वारी। मोक्षाची हे ॥ ६८॥
तरी फिटो कर्माचा पांगु। कीजो अवघाचि त्यागु। आदरिजो अव्यंगु। संन्यासु हा ॥ ६९॥
कर्मबाधेची कहीं। जेथ भयाची गोठी नाहीं। तें आत्मज्ञान जिहीं। स्वाधीन होय ॥ ७०॥
ज्ञानाचें आवाहनमंत्र। जें ज्ञान पिकतें सुक्षेत्र। ज्ञान आकर्षितें सूत्र। तंतु जे का ॥ ७१॥
ते दोनी संन्यास त्याग। अनुष्ठूनि सुटे जग। तरी हेंचि आतां चांग। व्यक्त पुसों ॥ ७२॥
ऐसें म्हणौनि पार्थें। त्यागसंन्यासव्यवस्थे। रूप होआवया जेथें। प्रश्नु केला ॥ ७३॥
तेथ प्रत्युत्तरें बोली। श्रीकृष्णें जे चावळिली। तया व्यक्ति जाली। अष्टादशा ॥ ७४॥
एवं जन्यजनकभावें। अध्यावो अध्यायातें प्रसवे। आतां ऐका बरवें। पुसिलें जें ॥ ७५॥
तरी पंडुकुमरें तेणें। देवाचें सरतें बोलणें। जाणोनि अंतःकरणें। काणी घेतली ॥ ७६॥
येऱ्हवीं तत्वविषयीं भला। तो निश्चितु असे कीर जाहला। परी देवो राहे उगला। तें साहावेना ॥ ७७॥
वत्स धालयाही वरी। धेनू न वचावी दुरी। अनन्य प्रीतीची परी। ऐसी आहे ॥ ७८॥
तेणें काजेवीणही बोलावें। तें देखीलें तरी पाहावें। भोगितां चाड दुणावे। पढियंतयाठायीं ॥ ७९॥
ऐसी प्रेमाची हे जाती। आणि पार्थ तंव तेचि मूर्ती। म्हणौनि करूं लाहे खंती। उगेपणाची ॥ ८०॥
आणि संवादाचेनि मिषें। जे अव्यवहारी वस्तु असे । ते भोगिजे कीं जैसें। आरिसां रूप ॥ ८१॥
मग संवादु तोही पारुखे। तरी भोगितां भोगणें थोके। हें कां साहवेल सुखें। लांचावलेया ? ॥ ८२॥
यालागीं त्याग संन्यास। पुसावयाचें घेऊनि मिस। मग उपलविलें दुस। गीतेंचें तें ॥ ८३॥
अठरावा अध्यावो नोहे। हे एकाध्यायी गीताचि आहे। जैं वांसरुचि गाय दुहे । तैं वेळु कायसा ॥ ८४॥
तैसी संपतां अवसरीं। गीता आदरविली माघारीं। स्वामी भृत्याचा न करी। संवादु काई ? ॥ ८५॥
परी हें असो ऐसें। अर्जुनें पुसिजत असे । म्हणे विनंती विश्वेशें। अवधारिजो ॥ ८६॥

अर्जुन उवाच ।
संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ॥ १॥

हां जी संन्यासु आणि त्यागु। इयां दोहीं एक अर्थीं लागु। जैसा सांघातु आणि संघु। संघातेंचि बोलिजे ॥ ८७॥
तैसेंचि त्यागें आणि संन्यासें। त्यागुचि बोलिजतु असे। । आमचेनि तंव मानसें। जाणिजे हेंचि ॥ ८८॥
ना कांहीं आथी अर्थभेदु। तो देवो करोतु विशदु। तेथ म्हणती श्रीमुकुंदु। भिन्नचि पैं ॥ ८९॥
तरी अर्जुना तुझ्या मनीं। त्याग संन्यास दोनी। एकार्थ गमलें हें मानीं। मीही साच ॥ ९०॥
इहीं दोहीं कीर शब्दीं। त्यागुचि बोलिजे त्रिशुद्धी। परी कारण एथ भेदीं। येतुलेंचि ॥ ९१॥
जें निपटूनि कर्म सांडिजे। तें सांडणें संन्यासु म्हणिजे। आणि फलमात्र का त्यजिजे। तो त्यागु गा ॥ ९२॥
तरी कोणा कर्माचें फळ। सांडिजे कोण कर्म केवळ। हेंही सांगों विवळ। चित्त दे पां ॥ ९३॥
तरी आपैसीं दांगें डोंगर। झाडें डाळती अपार। तैसें लांबे राजागर। नुठिती ते ॥ ९४॥
न पेरितां सैंघ तृणें। उठती तैसें साळीचें होणें। नाहीं गा राबाउणें। जियापरी ॥ ९५॥

कां अंग जाहलें सहजें। परी लेणें उद्यमें कीजे। नदी आपैसी आपादिजे। विहिरी जेवीं ॥ ९६॥
तैसें नित्य नैमित्तिक। कर्म होय स्वाभाविक। परी न कामितां कामिक। न निफजे जें ॥ ९७॥

श्रीभगवानुवाच ।
काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥ २॥

कां कामनेचेनि दळवाडें। जें उभारावया घडे। अश्वमेधादिक फुडे। याग जेथ ॥ ९८॥
वापी कूप आराम। अग्रहारें हन महाग्राम। आणीकही नाना संभ्रम। व्रतांचे ते ॥ ९९॥
ऐसें इष्टापूर्त सकळ। जया कामना एक मूळ। जें केलें भोगवी फळ। बांधोनियां ॥ १००॥
देहाचिया गांवा अलिया। जन्ममृत्यूचिया सोहळिया। ना म्हणों नये धनंजया। जियापरी ॥ १०१॥
का ललाटींचें लिहिलें। न मोडे गा कांहीं केलें। काळेगोरेपण धुतलें। फिटों नेणे ॥ १०२॥
केलें काम्य कर्म तैसें। फळ भोगावया धरणें बैसे। न फेडितां ऋण जैसें। वोसंडीना ॥ १०३॥
कां कामनाही न करितां। अवसांत घडे पंडुसुता। तरी वायकांडें न झुंजतां। लागे जैसें ॥ १०४॥
गूळ नेणतां तोंडीं। घातला देचि गोडी। आगी मानूनि राखोंडी। चेपिला पोळी ॥ १०५॥
काम्यकर्मी हें एक। सामर्थ्य आथी स्वाभाविक। म्हणौनि नको कौतुक। मुमुक्षु एथ ॥ १०६॥
किंबहुना पार्था ऐसें। जें काम्य कर्म गा असे । तें त्यजिजे विष जैसें। वोकूनियां ॥ १०७॥
मग तया त्यागातें जगीं। संन्यासु ऐसया भंगीं। बोलिजे अंतरंगीं। सर्वद्रष्टा ॥ १०८॥
हें काम्य कर्म सांडणें। तें कामनेतेंचि उपडणें। द्रव्यत्यागें दवडणें। भय जैसें ॥ १०९॥
आणि सोमसूर्यग्रहणें। येऊनि करविती पार्वणें। का मातापितरमरणें। अंकित जे दिवस ॥ ११०॥
अथवा अतिथी हन पावे। हें ऐसैसें पडे जैं करावें। तैं तें कर्म जाणावें। नौमित्तिक गा ॥ १११॥
वार्षिया क्षोमे गगन। वसंतें दुणावे वन। देहा श्रृंगारी यौवन-। दशा जैसी ॥ ११२॥
का सोमकांतु सोमें पघळें । सूर्यें फांकती कमळें। एथ असे तेंचि पाल्हाळे । आन नये ॥ ११३॥
तैसें नित्य जें का कर्म। तेंचि निमित्ताचे लाहे नियम। एथ उंचावे तेणें नाम। नैमित्तिक होय ॥ ११४॥
आणि सायंप्रातर्मध्यान्हीं। जें कां करणीय प्रतिदिनीं। परी दृष्टि जैसी लोचनीं। अधिक नोहे ॥ ११५॥
कां नापादितां गती। चरणीं जैसी आथी। नातरी ते दीप्ती। दीपबिंबीं ॥ ११६॥
वासु नेदितां जैसे। चंदनीं सौरभ्य असे । अधिकाराचे तैसें। रूपचि जें ॥ ११७॥
नित्य कर्म ऐसें जनीं। पार्था बोलिजे तें मानीं। एवं नित्य नैमित्तिक दोन्हीं। दाविलीं तुज ॥ ११८॥
हेंचि नित्य नैमित्तिक। अनुष्ठेय आवश्यक। म्हणौनि म्हणों पाहती एक। वांझययातें ॥ ११९॥
परी भोजनीं जैसें होये। तृप्ति लाहे भूक जाये। तैसे नित्यनैमित्तिकीं आहे। सर्वांगीं फळ ॥ १२०॥
कीड आगिटां पडे। तरी मळु तुटे वानी चढे। यया कर्मा तया सांगडें। फळ जाणावें ॥ १२१॥
जे प्रत्यवाय तंव गळे। स्वाधिकार बहुवें उजळे। तेथ हातोफळिया मिळे। सद्गतीसी ॥ १२२॥
येवढेवरी ढिसाळ। नित्यनैमित्तिकीं आहे फळ। परी तें त्यजिजे मूळ। नक्षत्रीं जैसें ॥ १२३॥
लता पिके आघवी। तंव च्यूत बांधे पालवीं। मग हात न लावित माधवीं। सोडूनि घाली ॥ १२४॥
तैसी नोलांडितां कर्मरेखा। चित्त दीजे नित्यनैमित्तिका। पाठीं फळा कीजे अशेखा। वांताचे वानी ॥ १२५॥
यया कर्म फळत्यागातें। त्यागु म्हणती पैं जाणते। एवं त्याग संन्यास तूतें। परीसविले ॥ १२६॥

हा संन्यासु जैं संभवे। तैं काम्य बाधूं न पावे। निषिद्ध तंव स्वभावें। निषेधें गेलें ॥१२७॥
आणि नित्यादिक जें असे । तें येणें फलत्यागें नसे। शिर लोटलिया जैसें। येर आंग ॥१२८॥
मग सस्य फळपाकांत। तैसें निमालिया कर्मजात। आत्मज्ञान गिंवसीत। अपैसें ये ॥१२९॥
ऐसिया निगुती दोनी। त्याग संन्यास अनुष्ठानीं। पडले गा आत्मज्ञानीं । बांधती पाटु ॥१३०॥
नातरी हे निगुती चुके। मग त्यागु कीजे हाततुकें। तैं कांहीं न त्यजे अधिकें। गोंवींचि पडे ॥१३१॥
जें औषध व्याधी अनोळख। तें घेतलिया परतें विख। कां अन्न न मानितां भूक। मारी ना काय ? ॥१३२॥
म्हणौनि त्याज्य जें नोहे। तेथ त्यागातें न सुवावें। त्याज्यालागीं नोहावें। लोभापर ॥१३३॥
चुकलिया त्यागाचें वेझें। केला सर्वत्यागुही होय वोझें। न देखती सर्वत्र दुजें। वीतराग ते ॥१३४॥

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे ॥३॥

एकां फळाभिलाष न ठके। ते कर्मातें म्हणती बंधकें। जैसें आपण नग्न भांडकें। जगातें म्हणे ॥१३५॥
कां जिव्हालंपट रोगिया। अन्नें दूषी धनंजया। आंगा न रुसे कोढिया। मासियां कोपे ॥१३६॥
तैसे फळकाम दुर्बळ। म्हणती कर्मचि किडाळ। मग निर्णयो देती केवळ। त्यजावें ऐसा ॥१३७॥
एक म्हणती यागादिक। करावेंचि आवश्यक। जे यावांचूनि शोधक। आन नसे ॥१३८॥
मनशुद्धीच्या मार्गीं। जैं विजयी व्हावें वेगीं। तैं कर्म सबळालागीं । आळसु न कीजे ॥१३९॥
भांगार आथी शोधावें। तरी आगी जेवी नुबगावें। कां दर्पणालागीं सांचावें। अधिक रज ॥१४०॥
नाना वस्त्रें चोख होआवीं। ऐसें आथी जरी जीवीं। तरी संवदणी न मनावी। मलिन जैसी ॥१४१॥
तैसीं कर्में क्लेशकारें। म्हणौनि न न्यावीं अव्हेरें। कां अन्नलाभें अरुवारें। रांधितिये उणें ॥१४२॥
इहीं इहीं गा शब्दीं। एक कर्मीं बांधिती बुद्धी। ऐसा त्यागु विसंवादीं। पडोनि ठेला ॥१४३॥
तरी विसंवादु तो फिटे। त्यागाचा निश्चयो भेटे। तैसें बोलों गोमटें। अवधान देईं ॥१४४॥

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः सम्प्रकीर्तितः ॥४॥

तरी त्यागु एथें पांडवा। त्रिविधु पैं जाणावा। तया त्रिविधाही बरवा। विभाग करूं ॥१४५॥
त्यागाचे तीन्ही प्रकार। कीजती जरी गोचर। तरी तूं इत्यर्थाचें सार। इतुलें जाण ॥१४६॥
मज सर्वज्ञाचिये बुद्धी। जें अलोट माने त्रिशुद्धी। निश्चयतत्व तें आधीं। अवधारीं पां ॥१४७॥
तरी आपुलिये सोडवणें। जो मुमुक्षु जागों म्हणे। तया सर्वस्वें करणें। हेंचि एक ॥१४८॥

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥५॥

जियें यज्ञदानतपादिकें। इयें कर्में आवश्यकें। तियें न सांडावीं पांथिकें। पाउलें जैसीं ॥१४९॥
हारपलें न देखिजे। तंव तयाचा मागु न सांडिजे। कां तृप्त न होतां न लोटिजे। भाणें जेवीं ॥१५०॥

नाव थडी न पवतां। न खांडिजे केळी न फळतां। कां ठेविलें न दिसतां। दीपु जैसा ॥ १५१॥
तैसी आत्मज्ञानविखीं। जंव निश्चिती नाहीं निकी। तंव नोहावें यागादिकीं। उदासीन ॥ १५२॥
तरी स्वाधिकारानुरुपें। तियें यज्ञदानें तपें। अनुष्ठावींचि साक्षेपें। अधिकेंवर ॥ १५३॥
जें चालणें वेगावत जाये। तो वेगु बैसावयाचि होये। तैसा कर्मातिशयो आहे। नैष्कर्म्यालागीं ॥ १५४॥
अधिकें जंव जंव औषधी। सेवनेची मांडी बांधी। तंव तंव मुकिजे व्याधी। तयाचिये ॥ १५५॥
तैसीं कर्मैं हातोपातीं। जैं कीजती यथानिगुती। तैं रजतमें झडती। झाडा देऊनी ॥ १५६॥
कां पाठोवाटीं पुटें। भांगारा खारु देणें घटे। तैं कीड झडकरी तुटे। निर्व्याजु होय ॥ १५७॥
तैसें निष्ठा केलें कर्म। तें झाडी करूनि रजतम। सत्वशुद्धीचें धाम। डोळां दावी ॥ १५८॥
म्हणौनियां धनंजया। सत्वशुद्धी गिंवसितया। तीर्थांचिया सावाया। आलीं कर्मैं ॥ १५९॥
तीर्थैं बाह्यमळु क्षाळे। कर्मैं अभ्यंतर उजळे। एवं तीर्थैं जाण निर्मळें। सत्कर्मैंहि ॥ १६०॥
तृषार्ता मरुदेशीं। झळे अमृतें वोळलीं जैसीं। कीं अंधालागीं डोळ्यांसी। सूर्यु आला ॥ १६१॥
बुडतया नदीच धाविन्नली। पडतया पृथ्वीच कळवळिली। निमतया मृत्यूनें दिधली। आयुष्यवृद्धी ॥ १६२॥
तैसें कर्मैं कर्मबद्धता। मुमुक्षु सोडविले पंडुसुता। जैसा रसरीति मरतां। राखिला विषें ॥ १६३॥
तैसीं एके हातवटिया। कर्मैं कीजती धनंजया। बंधकेंचि सोडवावया। मुख्यें होती ॥ १६४॥
आतां तेचि हातवटी। तुज सांगों गोमटी। जया कर्मातें किरीटी। कर्मचि रुसे ॥ १६५॥

एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च ।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥ ६॥

तरी महायागप्रमुखें। कर्मे निफजतांही अचुकें। कर्तेपणाचें न ठाके। फुंजणें आंगीं ॥ १६६॥
जो मोलें तीर्था जाये। तया मी यात्रा करितु आहे। ऐसिये श्लाघ्यतेचा नोहे। तोषु जेवीं ॥ १६७॥
कां मुद्रा समर्थाचिया। जो एकवटु झोंबे राया। तो मी जिणता ऐसिया। न येचि गर्वा ॥ १६८॥
जो कासें लागोनि तरे। तया पोहती ऊर्मी नुरे। पुरोहितु नाविष्करे। दातेपणें ॥ १६९॥
तैसें कर्तृत्व अहंकारें। नेघोनि यथा अवसरें। कृत्यजातांचें मोहरें। सारीजती ॥ १७०॥
केल्या कर्मा पांडवा। जो आथी फळाचा यावा। तया मोहरा हों नेदावा। मनोरथु ॥ १७१॥
आधींचि फळीं आस तुटिया। कर्मे आरंभावीं धनंजया। परावें बाळ धाया। पाहिजे जैसें ॥ १७२॥
पिंपरुवांचिया आशा। न शिंपिजे पिंपळु जैसा। तैसिया फळनिराशा। कीजती कर्मैं ॥ १७३॥
सांडूनि दुधाची टकळी। गोंवारी गांवधेनु वेंटाळी। किंबहुना कर्मफळीं। तैसें कीजे ॥ १७४॥
ऐसी हे हातवटी। घेऊनि जे क्रिया उठी। आपणा आपुलिया गांठी। लाहेची तो ॥ १७५॥
म्हणौनि फळीं लागु। सांडोनि देहसंगु। कर्मैं करावीं हा चांगु। निरोपु माझा ॥ १७६॥
जो जीवबंधेएं शिणला। सुटके जाचे आपला। तेणें पुढतपुढतीं या बोला। आन न कीजे ॥ १७७॥

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥ ७॥

नातरी आंधाराचेनि रोखें। जैसीं डोळां रोंविजती नखें। तैसा कर्मद्वेषें अशेखें। कर्मैंचि सांडी ॥ १७८॥

तयाचें जें कर्म सांडणें। तें तामस पैं मी म्हणें। शिसाराचे रागें लोटणें। शिरचि जैसें ॥ १७९ ॥
हां गा मार्गु दुवाडु होये। तरी निस्तरितील पाये। कीं तेचि खांडणें आहे। मार्गापराधें ॥ १८० ॥
भुकेलियापुढें अन्न। हो कां भलतैसें उन्ह। तरी बुद्धी न घेतां लंघन। भाणें पापरां हल्या ॥ १८१ ॥
तैसा कर्माचा बाधु कर्मीं। निस्तरीजे करितेनि वर्मीं। हे तामसु नेणें भ्रमें। माजविला ॥ १८२ ॥
कीं स्वभावें आलें विभागा। तें कर्मचि वोसंडी पैं गा। तरी झणें आतळा त्यागा। तामसा तया ॥ १८३ ॥

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् ।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ॥ ८ ॥

अथवा स्वाधिकारु बुझे। आपले विहितही सुजे। परी करितया उमजे। निबरपणा ॥ १८४ ॥
जे कर्माची ऐलीकड। नावेक दिसे दुवाड। जे वाहतिये वेळे जड। शिदोरी जैसी ॥ १८५ ॥
जैसा निंब जिभे कडवटु। हिरडा पहिलें तुरटु। तैसा कर्मा ऐल शेवटु। खणुवाळा होय ॥ १८६ ॥
कां धेनु दुवाड शिंग। शेवंतीये अडव आंग। भोजनसुख महाग। पाकु करितां ॥ १८७ ॥
तैसें पुढतपुढती कर्म । आरंभींच अति विषम। म्हणौनि तो तें श्रम। करितां मानी ॥ १८८ ॥
येऱ्हवीं विहितत्वें मांडी। परी घालितां असुरवाडीं। तेथ पोळला ऐसा सांडी। आदरिलेंही ॥ १८९ ॥
म्हणे वस्तु देहासारिखी। आली बहुतीं भाग्यविशेखीं। मा जाचूं कां कर्मादिकीं। पापिया जैसा ? ॥ १९० ॥
केलें कर्मीं जे द्यावें। तें झणें मज होआवें। आजि भोगूं ना कां बरवे। हातींचे भोग ? ॥ १९१ ॥
ऐसा शरीराचिया क्लेशा। भेणें कर्मीं वीरेशा। सांडी तो परीयेसा। राजसु त्यागु ॥ १९२ ॥
येऱ्हवीं तेथही कर्म सांडे। परी तया त्यागफळ न जोडे। जैसें उतलें आगीं पडे। तें नलगेचि होमा ॥ १९३ ॥
कां बुडोनि प्राण गेले। ते अर्धोदकीं निमाले। हें म्हणों नये जाहलें। दुर्मरणचि ॥ १९४ ॥
तैसें देहाचेनि लोभें। जेणें कर्मा पाणी सुभे। तेणें साच न लभे। त्यागाचें फळ ॥ १९५ ॥
किंबहुना आपुलें। जैं ज्ञान होय उदया आलें। तैं नक्षत्रातें पाहलें। गिळी जैसें ॥ १९६ ॥
तैशा सकारण क्रिया। हारपती धनंजया। तो कर्मत्यागु ये जया। मोक्षफळासी ॥ १९७ ॥
तें मोक्षफळ अज्ञाना। त्यागिया नाहीं अर्जुना। म्हणौनि तो त्यागु न माना। राजसु जो ॥ १९८ ॥
तरी कोणे पां एथ त्यागें। तें मोक्षफळ घर रिघे। हेंही आइक प्रसंगें। बोलिजेल ॥ १९९ ॥

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः ॥ ९ ॥

तरी स्वाधिकाराचेनि नांवें। जें वांटिया आलें स्वभावें। तें आचरे विधिगौरवें। शृंगारोनि ॥ २०० ॥
परी हें मी करितु असें। ऐसा आठवु त्यजी मानसें। तैसेचि पाणी दे आशे। फळाचिये ॥ २०१ ॥
पैं अवज्ञा आणि कामना। मातेच्या ठायीं अर्जुना। केलिया दोनी पतना। कारण होती ॥ २०२ ॥
तरी दोनीं यें त्यजावीं। मग माताची ते भजावी। वांचूनि मुखालागीं वाळावी। गायचि सगळी ? ॥ २०३ ॥
आवडतियेही फळीं। असारें साली आंठोळीं। त्यासाठीं अवगळी। फळातें कोण्ही ? ॥ २०४ ॥
तैसा कर्तृत्वाचा मदु। आणि कर्मफळाचा आस्वादु। या दोहींचें नांव बंधु। कर्माचा कीं ॥ २०५ ॥
तरी या दोहींच्या विखीं। जैसा बापु नातळे लेंकीं । तैसा हों न शके दुःखी। विहिता क्रिया ॥ २०६ ॥

हा तो त्याग तरुवरु। जो गा मोक्षफळें ये थोरु। सात्विक ऐसा डगरु। यासींच जगीं ॥ २०७॥
आतां जाळूनि बीज जैसें। झाडा कीजे निर्वंशें। फळ त्यागूनि कर्म तैसें। त्यजिलें जेणें ॥ २०८॥
लोह लागतखेंवो परीसीं। धातूची गंधिकाळिमा जैसी। जाती रजतमें तैसीं। तुटलीं दोन्ही ॥ २०९॥
मग सत्वें चोखाळें। उघडती आत्मबोधाचे डोळे। तेथ मृगांबु सांजवेळे। होय जैसें ॥ २१०॥
तैसा बुद्ध्यादिकांपुढां। असतु विश्वाभासु हा येवढा। तो न देखे कवणीकडां। आकाश जैसें ॥ २११॥

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ॥ १०॥

म्हणौनि प्राचिनाचेनि बळें। अलंकृतें कुशलाकुशलें। तियें व्योमाआंगीं आभाळें। जिरालीं जैसीं ॥ २१२॥
तैसीं तयाचिये दिठी। कर्मे चोखाळलीं किरीटी। म्हणौनि सुखदुःखीं उठी। पडेना तो ॥ २१३॥
तेणें शुभकर्म जाणावें। मग तें हर्षें करावें। कां अशुभालागीं होआवें। द्वेषिया ना ॥ २१४॥
तरी इयाविषयींचा कांहीं। तया एकुही संदेहो नाहीं। जैसा स्वप्नाच्या ठायीं। जागिन्नलिया ॥ २१५॥
म्हणौनि कर्म आणि कर्ता। या द्वैतभावाची वार्ता। नेणें तो पंडुसुता। सात्विक त्यागु ॥ २१६॥
ऐसेनि कर्मे पार्था। त्यजिलीं त्यजिती सर्वथा । अधिकें बांधिती अन्यथा। सांडिलीं तरी ॥ २१७॥

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥ ११॥

आणि हां गा सव्यसाची। मूर्ति लाहोनि देहाची। खंती करिती कर्माची। ते गांवढे गा ॥ २१८॥
मृत्तिकेचा वीटु। घेऊनि काय करील घटु ?। केउता ताथु पटु। सांडील तो ? ॥ २१९॥
तेवींचि वन्हित्व आंगीं। आणि उबे उबगणें आगी। कीं तो दीपु प्रभेलागीं। द्वेषु करील काई ? ॥ २२०॥
हिंगु त्रासिला घाणी। तरी कैचें सुगंधत्व आणी ?। द्रवपण सांडूनि पाणी । कें राहे तें ? ॥ २२१॥
तैसा शरीराचेनि आभासें। नांदतु जंव असे । तंव कर्मत्यागाचें पिसें। काइसें तरी ? ॥ २२२॥
आपण लाविजे टिळा। म्हणौनि पुसों ये वेळोवेळा। मा घाली फेडी निडळा। कां करूं ये गा ? ॥ २२३॥
तैसें विहित स्वयें आदरिलें। म्हणौनि त्यजूं ये त्यजिलें। परी कर्मचि देह आतलें। तें कां सांडील गा ? ॥ २२४॥
जें श्वासोच्छ्वासवरी। होत निजेलियाहीवरी। कांहीं न करणेंयाचि परी। होती जयाची ॥ २२५॥
या शरीराचेनि मिसकें। कर्मची लागलें असिकें। जितां मेलया न ठाके। इया रीती ॥ २२६॥
यया कर्मातें सांडिती परी। एकीचि ते अवधारीं। जे करितां न जाइजे हारीं। फळशेचिये ॥ २२७॥
कर्मफळ ईश्वरीं अर्पे। तत्प्रसादें बोधु उद्दीपें। तेथ रज्जुज्ञानें लोपे। व्याळशंका ॥ २२८॥
तेणें आत्मबोधें तैसें। अविद्येसीं कर्म नाशे। पार्था त्यजिजे जैं ऐसें। तैं त्यजिलें होय ॥ २२९॥
म्हणौनि इयापरी जगीं। कर्मे करितां मानूं त्यागी। येर मुर्छने नांव रोगी। विसांवा जैसा ॥ २३०॥
तैसा कर्मीं शिणे एकीं। तो विसांवो पाहे आणिकीं। दांडेयाचे घाय बुकी। धाडणें जैसें ॥ २३१॥
परी हें असो पुढती। तोचि त्यागी त्रिजगतीं। जेणें फळत्यागें निष्कृती। नेलें कर्म ॥ २३२॥

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् ।

भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् ॥१२॥

येऱ्हवीं तरी धनंजया। त्रिविधा कर्मफळा गा यया। समर्थ ते कीं भोगावया। जे न सांडितीचि आशा ॥ २३३॥
आपणचि विऊनि दुहिता। कीं न मम म्हणे पिता। तो सुटे कीं प्रतिग्रहीता। जांवई शिरके ॥ २३४॥
विषाचे आगरही वाहती। तें विकितां सुखें लाभे जिती। येर निमालें जे घेती। वेंचोनि मोलें ॥ २३५॥
तैसें कर्ता कर्म करू। अकर्ता फळाशा न धरू। एथ न शके आवरूं। दोहींतें कर्म ॥ २३६॥
वाटे पिकलिया रुखाचें। फळ अपेक्षी तयाचें। तेवीं साधारण कर्माचें। फळ घे तया ॥ २३७॥
परी करूनि फळ नेघे। तो जगाच्या कामीं न रिघे। जे त्रिविध जग अवघें। कर्मफळ हें ॥ २३८॥
देव मनुष्य स्थावर। यया नांव जगडंबर। आणि हे तंव तिन्ही प्रकार। कर्मफळांचे ॥ २३९॥
तेंचि एक गा अनिष्ट। एक तें केवळ इष्ट। आणि एक इष्टानिष्ट। त्रिविध ऐसें ॥ २४०॥
परी विषयमंतीं बुद्धी। आंगीं सूनि अविधी। प्रवर्तती जे निषिद्धीं। कुव्यापारीं ॥ २४१॥
तेथ कृमि कीट लोष्ट। हे देह लाहती निकृष्ट। तया नाम तें अनिष्ट। कर्मफळ ॥ २४२॥
कां स्वधर्मा मानु देतां। स्वाधिकारु पुढां सूतां। सुकृत कीजे पुसतां। आम्नायातें ॥ २४३॥
तैं इंद्रादिक देवांचीं। देहें लाहिजती सव्यसाची। तया कर्मफळा इष्टाची। प्रसिद्धि गा ॥ २४४॥
आणि गोड आंबट मिळे। तेथ रसांतर फरसाळें। उठी दोंही वेगळें। दोहीं जिणतें ॥ २४५॥
रेचकुचि योगवशें। होय स्तंभावयादोषें। तेवीं सत्यासत्य समरसें। सत्यासत्यचि जिणिजे ॥ २४६॥
म्हणौनि समभागें शुभाशुभें। मिळोनि अनुष्ठानाचें उभें। तेणें मनुष्यत्व लाभे। तें मिश्र फळ ॥ २४७॥
ऐसें त्रिविध यया भागीं। कर्मफळ मांडलेसें जगीं। हें न सांडी तयां भोगीं। जें सूदले आशा ॥ २४८॥
जेथें जिव्हेचा हातु फांटे। तंव जेवितां वाटे गोमटें। मग परीणामीं शेवटें। अवश्य मरण ॥ २४९॥
संवचोरमैत्री चांग। जंव न पविजे तें दांग। सामान्या भली आंग। न शिवे तंव ॥ २५०॥
तैसीं कर्में करितां शरीरीं। लाहती महत्त्वाची फरारी। पाठीं निधनीं एकसरी। पावती फळें ॥ २५१॥
तैसा समर्थु आणि ऋणिया। मागों आला बाइणिया। न लोटे तैसा प्राणिया। पडे तो भोगु ॥ २५२॥
मग कणिसौनि कणु झडे। तो विरूढला कणिसा चढे। पुढती भूमी पडे। पुढती उठी ॥ २५३॥
तैसें भोगीं जें फळ होय। तें फळांतरें वीत जाय। चालतां पावो पाय। जिणिजे जैसा ॥ २५४॥
उताराचिये सांगडी। ठाके ते ऐलीच थडी। तेवीं न मुकीजती वोढी। भोग्याचिये ॥ २५५॥
पैं साध्यसाधनप्रकारें। फळभोगु तो पसरे। एवं गोंविले संसारें। अत्यागी ते ॥ २५६॥
येऱ्हवीं जाईचियां फुलां फांकणें। त्याचि नाम जैसें सुकणें। तैसें कर्ममिषें न करणें। केलें जिहीं ॥ २५७॥
बीजचि वरोसि वेंचे। तेथ वाढती कुळवाडी खांचे। तेवीं फळत्यागें कर्माचें। सारिलें काम ॥ २५८॥
ते सत्वशुद्धि साहाकारें। गुरुकृपामृततुषारें। सासिन्नलेनि बोधें वोसरे। द्वैतदैन्य ॥ २५९॥
तेव्हां जगदाभासमिषें। स्फुरे तें त्रिविध फळ नाशे। एथ भोक्ता भोग्य आपैसें। निमालें हें ॥ २६०॥
घडे ज्ञानप्रधानु हा ऐसा। संन्यासु जयां वीरेशा। तेचि फलभोग सोसा। मुकले गा ॥ २६१॥
आणि येणें कीर संन्यासें। जैं आत्मरूपीं दिठी पैसे। तैं कर्म एक ऐसें । देखणें आहे ? ॥ २६२॥
पडोनि गेलिया भिंती। चित्रांची केवळ होय माती। कां पाहालेया राती। आंधारें उरे ? ॥ २६३॥
जैं रूपचि नाहीं उभें। तैं साउली काह्याची शोभे ?। दर्पणेवीण बिंबें। वदन कें पां ? ॥ २६४॥
फिटलिया निद्रेचा ठावो। कैचा स्वप्नासि प्रस्तावो ?। मग साच का वावो। कोण म्हणे ? ॥ २६५॥
तैसें गा संन्यासें येणें। मूळ अविद्येसीचि नाहीं जिणें। मा तियेचें कार्य कोणें। घेपे दीजे ? ॥ २६६॥

म्हणौनि संन्यासी ये पाहीं। कर्माची गोठी कीजेल ख़ई । परी अविद्या आपुलाम् देहीं। आहे जै कां ॥ २६७॥
जैं कर्तेपणाचेनि थावें। आत्मा शुभाशुभीं धांवें। दृष्टि भेदाचिये राणिवे। रचलीसे जैं ॥ २६८॥
तैं तरी गा सुवर्मा। बिजावळी आत्मया कर्मा। अपाडें जैसी पश्चिमा। पूर्वेसि कां ॥ २६९॥
नातरी आकाशा का आभाळा। सूर्या आणि मृगजळा। बिजावळी भूतळा। वायूसि जैसी ॥ २७०॥
पांघरौनि नईचें उदक। असे नईचिमाजीं खडक। परी जाणिजे का वेगळिक । कोडीची ते ॥ २७१॥
हो कां उदकाजवळी। परी सिनानीचि ते बाबुळी। काय संगास्तव काजळी। दीपु म्हणों ये ? ॥ २७२॥
जरी चंद्रीं जाला कलंकु। तरी चंद्रेसीं नव्हे एकु। आहे दृष्टी डोळ्यां विवेकु। अपाडु जेतुला ॥ २७३॥
नाना वाटा वाटे जातया। वोघा वोघीं वाहातया। आरसा आरसां पाहातया। अपाडु जेतुला ॥ २७४॥
पार्था गा तेतुलेनि मानें। आत्मेंनिसीं कर्म सिनें। परी घेवविजे अज्ञानें। तें कीर ऐसें ॥ २७५॥
विकाशें रवीतें उपजवी। द्वुती अलीकरवी भोगवी। ते सरोवरीं कां बरवी । अब्जिनी जैसी ॥ २७६॥
पुढतपुढती आत्मक्रिया। अन्यकारणकाचि तैशिया। करूं पांचांही तयां। कारणां रूप ॥ २७७॥

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ।
साङ्ख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ॥ १३॥

आणि पांचही कारणें तियें। तूंही जाणसील विपायें। जें शास्त्रें उभऊनी बाहे। बोलती तयांते ॥ २७८॥
वेदरायाचिया राजधानीं। सांख्यवेदांताच्या भुवनीं। निरूपणाच्या निशाणध्वनीं। गर्जती जियें ॥ २७९॥
जें सर्वकर्मसिद्धीलागीं। इयेंचि मुद्दलें हो जगीं। तेथ न सुवावा अभंगीं। आत्मराजु ॥ २८०॥
ह्या बोलाचि डांगुरटी। तियें प्रसिद्धीचि आली किरीटी। म्हणौनि तुझ्या हन कर्णपुटीं। वसों हें काज ॥ २८१॥
आणि मुखांतरीं आइकिजे। तैसें कायसें हें ओझें। मी चिद्रत्न तुझें । असतां हातीं ॥ २८२॥
दर्पणु पुढां मांडलेया। कां लोकांचियां डोळयां। मानु द्यावा पहावया। आपुलें निकें ॥ २८३॥
भक्त जैसेनि जेथ पाहे। तेथ तें तेंचि होत जाये। तो मी तुझें जाहालों आहें। खेळणें आजी ॥ २८४॥
ऐसें हें प्रीतीचेनि वेगें। देवो बोलतां से नेघे। तंव आनंदामाजीं आंगें। विरतसे येरु ॥ २८५॥
चांदिणियाचा पडिभरु। होतां सोमकांताचा डोंगरु। विघरोनि सरोवरु। हों पाहे जैसा ॥ २८६॥
तैसें सुख आणि अनुभूती। या भावांची मोडूनि भिंती। आतलें अर्जुनाकृति। सुखचि जेथ ॥ २८७॥
तेथ समर्थु म्हणौनि देवा। अवकाशु जाहला आठवा। मग बुडतयाचा धांवा। जीवें केला ॥ २८८॥
अर्जुना येसणें धेंडें। प्रज्ञा पसरेंसीं बुडे। आलें भरतें एवढें। तें काढूनि पुढती ॥ २८९॥
देवो म्हणे हां गा पार्था। तूं आपणपें देख सर्वथा। तंव श्वासूनि येरें माथा। तुकियेला ॥ २९०॥
म्हणे जाणसी दातारा। मी तुजशीं व्यक्तिशेजारा। उबगला आजी एकाहारा। येवों पाहें ॥ २९१॥
तयाही हा ऐसा। लोभें देतसां जरी लालसा। तरी कां जी घालीतसां। आड आड जीवा ? ॥ २९२॥
तेथ श्रीकृष्ण म्हणती निकें। अद्यापि नाहीं मा ठाऊकें। वेडया चंद्रा आणि चंद्रिके। न मिळणें आहे ?॥ २९३॥
आणि हाही बोलोनि भावो। तुज दाऊं आम्ही भिवों। जे रुसतां बांधे थांवो। तें प्रेम गा हें ॥ २९४॥
एथ एकमेकांचिये खुणें। विसंवादु तंवचि जिणें। म्हणौनि असो हें बोलणें। इयेविषयींचें ॥ २९५॥
मग कैशी कैशी ते आतां । बोलत होतों पंडुसुता। सर्व कर्मा भिन्नता। आत्मेनिसीं ॥ २९६॥
तंव अर्जुन म्हणे देवें। माझिये मनींचेंचि स्वभावें। प्रस्ताविलें बरवें। प्रमेय तें जी ॥ २९७॥
जें सकळ कर्माचें बीज। कारणपंचक तुज। सांगेन ऐसी पैज। घेतली कां ॥ २९८॥

आणि आत्मया एथ कांहीं। सर्वथा लागु नाहीं। हें पुढारलासि ते देईं। लाहाणें माझें ॥ २९९ ॥
यया बोला विश्वेशें। म्हणितलें तोषें बहुवसे। इयेविषयीं धरणें बैसे। ऐसें कें जोडे ? ॥ ३०० ॥
तरी अर्जुना निरूपिजेल। तें कीर भाषेआंतुल। परी मेचु ये होईजेल। ऋणिया तुज ॥ ३०१ ॥
तंव अर्जुन म्हणे देवो। काई विसरले मागील भावो ?। इये गोंठीस कीं राखत आहों। मीतूंपण जी ? ॥ ३०२ ॥
एथ श्रीकृष्ण म्हणती हो कां। आतां अवधानाचा पसरु निका। करूनियां आइका। पुढारलों तें ॥ ३०३ ॥
तरी सत्यचि गा धनुर्धरा। सर्वकर्मांचा उभारा। होतसे बहिरबाहिरा। करणीं पांचें ॥ ३०४ ॥
आणि पांच कारण दळवाडें। जिहीं कर्माकारु मांडे। ते हेतुस्तव घडे। पांच आथी ॥ ३०५ ॥
येर आत्मतत्त्व उदासीन। तें ना हेतु ना उपादान। ना ते अंगें करी संवाहन। कर्मसिद्धीचें ॥ ३०६ ॥
तेथ शुभाशुभीं अंशीं। निफजती कर्में ऐसीं। राती दिवो आकाशीं। जियापरी ॥ ३०७ ॥
तोय तेज धूमु। ययां वायूसीं संगमु। जालिया होय अभ्रागमु। व्योम तें नेणें ॥ ३०८ ॥
नाना काष्ठीं नाव मिळे। ते नावाडेनि चळे। चालविजे अनिळें। उदक तें साक्षी ॥ ३०९ ॥
कां कवणे एकें पिंडे। वेंचितां अवतरे भांडें। मग भवंडीजे दंडें। भ्रमे चक्र ॥ ३१० ॥
आणि कर्तृत्व कुलालाचें। तेथ काय तें पृथ्वीयेचें। आधारावांचूनि वेंचे। विचारीं पां ॥ ३११ ॥
हेंहि असो लोकांचिया। राहाटी होतां आघविया। कोण काम सवितया। आंगा आलें ? ॥ ३१२ ॥
तैसें पांचहेतुमिळणीं। पांचेंचि इहीं कारणीं। कीजे कर्मलतांची लावणी। आत्मा सिना ॥ ३१३ ॥
आतां तेंचि वेगळालीं। पांचही विवंचूं गा भलीं। तुकोनि घेतलीं। मोतियें जैसीं ॥ ३१४ ॥

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ॥ १४ ॥

तैसीं यथा लक्षणें। आइकें कर्म-कारणें। तरी देह हें मी म्हणें। पहिलें एथ ॥ ३१५ ॥
ययातें अधिष्ठान ऐसें। म्हणिजे तें याचि उद्देशें। जे स्वभोग्येंसीं वसे। भोक्ता येथ ॥ ३१६ ॥
इंद्रियांच्या दाहें हातीं। जाचोनियां दिवोराती। सुखदुःखें प्रकृती। जोडीजती जियें ॥ ३१७ ॥
तियें भोगावया पुरुखा। आन ठावोचि नाहीं देखा। म्हणौनि अधिष्ठानभाखा। बोलिजे देह ॥ ३१८ ॥
हें चोविसांही तत्वांचें। कुटुंबघर वस्तीचें। तुटे बंधमोक्षाचें। गुंथाडे एथ ॥ ३१९ ॥
किंबहुना अवस्थात्रया। हें अधिष्ठान धनंजया। म्हणौनि देहा यया। हेंचि नाम ॥ ३२० ॥
आणि कर्ता हें दुजें। कर्माचें कारण जाणिजे। प्रतिबिंब म्हणिजे। चैतन्याचें जें ॥ ३२१ ॥
आकाशचि वर्षे नीर। तें तळवटीं बांधे नाडर। मग बिंबोनि तदाकार। होय जेवीं ॥ ३२२ ॥
कां निद्राभरें बहुवें। राया आपणपें ठाउवें नव्हे। मग स्वप्नींचिये सामावे। रंकपणीं ॥ ३२३ ॥
तैसें आपुलेनि विसरें। चैतन्यचि देहाकारें। आभासोनि आविष्करें। देहपणें जें ॥ ३२४ ॥
जया विसराच्या देशीं। प्रसिद्धि गा जीवु ऐसी। जेणें भाष केली देहेंसी। आघवाविषयीं ॥ ३२५ ॥
प्रकृति करी कर्में। तीं म्यां केलीं म्हणे भ्रमें। येथ कर्ता येणें नामें। बोलिजे जीवु ॥ ३२६ ॥
मग पातेयांच्या केशीं। एकीच उठी दिठी जैसी। मोकळी चवरी ऐसी। चिरीव गमे ॥ ३२७ ॥
कां घराआंतुल एकु। दीपाचा तो अवलोकु। गवाक्षभेदें अनेकु। आवडे जेवीं ॥ ३२८ ॥
कां एकुचि पुरुषु जैसा। अनुसरत नवां रसां। नवविधु ऐसा। आवडों लागे ॥ ३२९ ॥
तेवीं बुद्धीचें एक जाणणें। श्रोत्रादिभेदें येणें। बाहेरी इंद्रियपणें। फांके जें कां ॥ ३३० ॥

तें पृथग्विध करण। कर्माचें इया कारण। तिसरें गा जाण। नृपनंदना ॥ ३३१॥
आणि पूर्वपश्चिमवाहणीं। निघालिया वोघाचिया मिळणी। होय नदी नद पाणी। एकचि जेवीं ॥ ३३२॥
तैसी क्रियाशक्ति पवनीं। असे जे अनपायिनी। ते पडिली नानास्थानीं। नाना होय ॥ ३३३॥
जैं वाचे करी येणें। तैं तेंचि होय बोलणें। हाता आली तरी घेणें। देणें होय ॥ ३३४॥
अगा चरणाच्या ठायीं। तरी गति तेचि पाहीं। अधोद्वारीं दोहीं। क्षरणें तेचि ॥ ३३५॥
कंदौनि हृदयवरी। प्रणवाची उजरी। करितां तेचि शरीरीं। प्राणु म्हणिजे ॥ ३३६॥
मग उर्ध्वींचिया रिगानिगा। पुढती तेचि शक्ति पैं गा। उदानु ऐसिया लिंगा। पात्र जाहली ॥ ३३७॥
अधोरंध्राचेनि वाहें। अपानु हें नाम लाहे। व्यापकपणें होये। व्यानु तेचि ॥ ३३८॥
आरोगिलेनि रसें। शरीर भरी सरिसें। आणि न सांडितां असे । सर्वसंधीं ॥ ३३९॥
ऐसिया इया राहटीं। मग तेचि क्रिया पाठीं। समान ऐसी किरीटी। बोलिजे गा ॥ ३४०॥
आणि जांभई शिंक ढेंकर। ऐसैसा होतसे व्यापार। नाग कूर्म कृकर। इत्यादि होय ॥ ३४१॥
एवं वायूची हे चेष्टा। एकीचि परी सुभटा। वर्तनास्तव पालटा। येतसे जे ॥ ३४२॥
तें भेदली वृत्तिपंथें। वायुशक्ति गा एथें। कर्मकारण चौथें। ऐसें जाण ॥ ३४३॥
आणि ऋतु बरवा शारदु। शारदीं पुढती चांदु। चंद्रीं जैसा संबंधु। पूर्णिमेचा ॥ ३४४॥
कां वसंतीं बरवा आरामु। आरामींही प्रियसंगमु । संगमीं आगमु। उपचारांचा ॥ ३४५॥
नाना कमळीं पांडवा। विकासु जैसा बरवा। विकासींही यावा। परागाचा ॥ ३४६॥
वाचे बरवें कवित्व। कवित्वीं बरवें रसिकत्व। रसिकत्वीं परतत्व। स्पर्शु जैसा ॥ ३४७॥
तैसी सर्ववृत्तिवैभवीं। बुद्धिचि एकली बरवी। बुद्धिही बरव नवी। इंद्रियप्रौढी ॥ ३४८॥
इंद्रियप्रौढीमंडळा। शृंगारु एकुचि निर्मळा। जैं अधिष्ठात्रियां कां मेळा। देवतांचा जो ॥ ३४९॥
म्हणौनि चक्षुरादिकीं दाहें। इंद्रियां पाठीं स्वानुग्रहें। सूर्यादिकां कां आहे। सुरांचें वृंद ॥ ३५०॥
तें देववृंद बरवें। कर्मकारण पांचवें। अर्जुना एथ जाणावें। देवो म्हणे ॥ ३५१॥
एवं माने तुझिये आयणी। तैसी कर्मजातांची हे खाणी। पंचविध आकर्णीं। निरूपिली ॥ ३५२॥
आतां हेचि खाणी वाढे। मग कर्माची सृष्टि घडे। जिहीं ते हेतुही उघडे। दाऊं पांचै ॥ ३५३॥

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः ॥ १५॥

तरी अवसांत आली माधवी। ते हेतु होय नवपल्लवीं। पल्लव पुष्पपुंज दावी। पुष्प फळातें ॥ ३५४॥
कां वार्षिये आणिजे मेघु। मेघें वृष्टिप्रसंगु। वृष्टीस्तव भोगु। सस्यसुखाचा ॥ ३५५॥
नातरी प्राची अरुणातें विये। अरुणें सूर्योदयो होये। सूर्यें सगळा पाहे। दिवो जैसा ॥ ३५६॥
तैसें मन हेतु पांडवा। होय कर्मसंकल्पभावा। तो संकल्पु लावी दिवा। वाचेचा गा ॥ ३५७॥
मग वाचेचा तो दिवटा। दावी कृत्यजातांचिया वाटा। तेव्हां कर्ता रिगे कामठां । कर्तृत्वाच्या ॥ ३५८॥
तेथ शरीरादिक दळवाडें। शरीरादिकां हेतुचि घडे। लोहकाम लोखंडें। निर्वाळिजे जैसें ॥ ३५९॥
कां तांथुवाचा ताणा। तांथु घालितां वैरणा। तो तंतुचि विचक्षणा। होय पटु ॥ ३६०॥
तैसें मनवाचादेहाचें। कर्म मनादि हेतुचि रचे। रत्नीं घडे रत्नाचें। दळवाडें जेवीं ॥ ३६१॥
एथ शरीरादिकें कारणें। तेंचि हेतु केवीं हें कोणें। अपेक्षिजे तरी तेणें। अवधारिजो ॥ ३६२॥

आइका सूर्याचिया प्रकाशा। हेतु कारण सूर्युचि जैसा। कां ऊंसाचें कांडें ऊंसा। वाढी हेतु ॥ ३६३॥
नाना वाग्देवता वानावी। तैं वाचाचि लागे कामवावी। कां वेदां वेदेंचि बोलावी। प्रतिष्ठा जेवीं ॥ ३६४॥
तैसें कर्मा शरीरादिकें। कारण हें कीर ठाउकें। परी हेंचि हेतु न चुके। हेंही एथ ॥ ३६५॥
आणि देहादिकीं कारणीं। देहादि हेतु मिळणीं। होय जया उभारणी। कर्मजातां ॥ ३६६॥
तें शास्त्रार्थें मानिलेया। मार्गा अनुसरे धनंजया। तरी न्याय तो न्याया। हेतु होय ॥ ३६७॥
जैसा पर्जन्योदकाचा लोटु। विपायें धरी साळीचा पाटु। तो जिरे परी अचाटु। उपयोगु आथी ॥ ३६८॥
कां रोषें निघालें अवचटें। पडिलें द्वारकेचिया वाटे । तें शिणे परी सुनाटें। न वचिती पदें ॥ ३६९॥
तैसें हेतुकारण मेळें। उठी कर्म जें आंधळें। तें शास्त्राचें लाहे डोळे। तैं न्याय म्हणिपे ॥ ३७०॥
ना दूध वाढिता ठावो पावे। तंव उतोनि जाय स्वभावें। तोही वेंचु परी नव्हे। वेंचिलें तें ॥ ३७१॥
तैसें शास्त्रसाह्येंवीण। केलें नोहे जरी अकारण। तरी लागो कां नागवण। दानलेखीं ॥ ३७२॥
अगा बावन्ना वर्णांपरता। कोण मंत्रु आहे पंडुसुता। कां बावन्नही नुच्चारितां। जीवु आथी ? ॥ ३७३॥
परी मंत्राची कडसणी। जंव नेणिजे कोदंडपाणी। तंव उच्चारफळ वाणी। न पवे जेवीं ॥ ३७४॥
तेवीं कारणहेतुयोगें। जें बिसाट कर्म निगे। तें शास्त्राचिये न लगे। कांसे जंव ॥ ३७५॥
कर्म होतचि असे तेव्हांही। परी तें होणें नव्हे पाहीं। तो अन्यायो गा अन्यायीं। हेतु होय ॥ ३७६॥

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः ।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ॥ १६॥

एवं पंचकारणा कर्मा। पांचही हेतु हे सुमहिमा। आतां एथें पाहें पां आत्मा। सांपडला असे ? ॥ ३७७॥
भानु न होनि रूपें जैसीं। चक्षुरूपातें प्रकाशी। आत्मा न होनि कर्में तैसीं। प्रकटित असे गा ॥ ३७८॥
पैं प्रतिबिंब आरिसा। दोन्ही न होनि वीरेशा। दोहींतें प्रकाशी जैसा। न्याहाळिता तो ॥ ३७९॥
कां अहोरात्र सविता। न होनि करी पंडुसुता। तैसा आत्मा कर्मकर्ता। न होनि दावी ॥ ३८०॥
परी देहाहंमान भुली। जयाची बुद्धि देहींचि आतली। तया आत्मविषयीं जाली। मध्यरात्री गा ॥ ३८१॥
जेणें चैतन्या ईश्वरा ब्रह्मा। देहचि केलें परमसीमा। तया आत्मा कर्ता हे प्रमा। अलोट उपजे ॥ ३८२॥
आत्माचि कर्मकर्ता। हाही निश्चयो नाहीं तत्वतां। देहोचि मी कर्मकर्ता। मानितो साचे ॥ ३८३॥
जे आत्मा मी कर्मातीतु। सर्वकर्मसाक्षिभूतु। हे आपुली कहीं मातु। नायकेचि कानीं ॥ ३८४॥
म्हणौनि उमपा आत्मयातें। देहचिवरी मविजे एथें। विचित्र काई रात्रि दिवसातें। डुडुळ न करी ? ॥ ३८५॥
पैं जेणें आकाशींचा कहीं। सत्य सूर्यु देखिला नाहीं। तो थिल्लरींचें बिंब काई। मानू न लाहे ? ॥ ३८६॥
थिल्लराचेनि जालेपणें। सूर्यासि आणी होणें। त्याच्या नाशीं नाशणें। कंपें कंपू ॥ ३८७॥
आणि निद्रिस्ता चेवो नये। तंव स्वप्न साच हों लाहे। रज्जु नेणतां सापा बिहे। विस्मो कवण ? ॥ ३८८॥
जंव कवळ आथि डोळां। तंव चंद्रु देखावा कीं पिंवळा। काय मृगींहीं मृगजळा। भाळावें नाहीं ? ॥ ३८९॥
तैसा शास्त्रगुरूचेनि नांवें। जो वाराही टेंकों नेदी सिवें। केवळ मौढ्याचेनिचि जीवें। जियाला जो ॥ ३९०॥
तेणें देहात्मदृष्टीमुळें। आत्मया घापे देहाचें जाळें। जैसा अभ्राचा वेगु कोल्हें। चंद्रीं मानीं ॥ ३९१॥
मग तया मानणयासाठीं। देहबंदीशाळे किरीटी। कर्माच्या वज्रगांठीं। कळासे तो ॥ ३९२॥
पाहे पां बद्ध भावना दृढा। नळियेवरी तो बापुडा। काय मोकळेयाही पायाचा चवडा। न ठकेचि पुंसा ॥ ३९३॥
म्हणौनि निर्मळा आत्मस्वरूपीं। तो प्रकृतीचें केलें आरोपी। तो कल्पकोडीच्या मापीं। मवीचि कर्में ॥ ३९४॥

आता कर्मामाजीं असे । परी तयातें कर्म न स्पर्शे। वडवानळातें जैसें। समुद्रोदक ॥ ३९५॥
तैसेंनि वेगळेपणें। जयाचें कर्मीं असणें। तो कीर वोळखावा कवणें। तरी सांगो ॥ ३९६॥
जे मुक्तातें निर्धारितां। लाभे आपलीच मुक्तता। जैसी दीपें दिसें पाहतां। आपली वस्तु ॥ ३९७॥
नातरी दर्पणु जंव उटिजे। तंव आपणपयां आपण भेटिजे। कां तोय पावतां तोय होईजे। लवणें जेंवीं ॥ ३९८॥
हें असो परतोनि मागुतें। प्रतिबिंब पाहे बिंबातें। तंव पाहणें जाउनी आयितें। बिंबचि होय ॥ ३९९॥
तैसें हारपलें आपणपें पावे। तैं संतांतें पाहतां गिंवसावें। म्हणौनि वानावे ऐकावे। तेचि सदा ॥ ४००॥
परी कर्मीं असोनि कर्में । जो नावरे समेंविषमें। चर्मचक्षूंचेनि चामें। दृष्टि जैसी ॥ ४०१॥
तैसा सोडवला जो आहे। तयाचें रूप आतां पाहें। उपपत्तीची बाहे। उभऊनि सांगों ॥ ४०२॥

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वाऽपि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ॥ १७॥

तरी अविद्येचिया निदा। विश्वस्वप्नाचा हा धांदा। भोगीत होता प्रबुद्धा। अनादि जो ॥ ४०३॥
तो महावाक्याचेनि नांवें। गुरुकृपेचेनि थांवें। माथां हातु ठेविला नव्हे। थापटिला जैसा ॥ ४०४॥
तैसा विश्वस्वप्नेंसीं माया। नीद सांडूनि धनंजया। सहसा चेइला अद्वया-। नंदपणें जो ॥ ४०५॥
तेव्हां मृगजळाचे पूर। दिसते एक निरंतर। हारपती कां चंद्रकर। फांकतां जैसे ॥ ४०६॥
कां बाळत्व निघोनि जाय। तैं बागुला नाहीं त्राय। पैं जळालिया इंधन न होय। इंधन जेवीं ॥ ४०७॥
नाना चेवो आलिया पाठीं। तैं स्वप्न न दिसे दिठी। तैसी अहं ममता किरीटी। नुरेचि तया ॥ ४०८॥
मग सूर्यु आंधारालागीं। रिघो कां भलते सुरंगीं। परी तो तयाच्या भागीं। नाहींचि जैसा ॥ ४०९॥
तैसा आत्मत्वें वेष्टिला होये। तो जया जया दृश्यातें पाहें। तें दृष्य द्रष्टेपणेंसीं होत जाये। तयाचेंचि रूप ॥ ४१०॥
जैसा वन्हि जया लागे। तें वन्हिचि जालिया आंगें। दाह्यदाहकविभागें। सांडिजे तें ॥ ४११॥
तैसा कर्माकारा दुजेया। तो कर्तेपणाचा आत्मया। आळु आला तो गेलिया। कांहीं बाहीं जें उरे ॥ ४१२॥
तिये आत्मस्थितीचा जो रावो। मग तो देहीं इये जाणेल ठावो ? । काय प्रलयांबूचा उन्नाहो। वोघु मानी ? ॥ ४१३॥
तैसी ते पूर्ण अहंता। काई देहपणें पंडुसुता। आवरे काई सविता। बिंबें धरिला ? ॥ ४१४॥
पैं मथूनि लोणी घेपे। तें मागुती ताकीं घापे। तरी तें अलिप्तपणें सिंपे। तेणेंसी काई ? ॥ ४१५॥
नाना काष्ठौनि वीरेशा। वेगळा केलिया हुताशा। राहे काष्ठाचिया मांदुसा। कोंडलेपणें ? ॥ ४१६॥
कां रात्रीचिया उदराआंतु। निघाला जो हा भास्वतु। तो रात्री ऐसी मातु। ऐके कायी ? ॥ ४१७॥
तैसें वेद्य वेदकपणेंसी। पडिलें कां जयाचे ग्रासीं। तया देह मी ऐसी। अहंता कैंची ? ॥ ४१८॥
आणि आकाशें जेथें जेथुनी। जाइजे तेथ असे भरोनी। म्हणौनि ठेलें कोंदोनी। आपेंआप ॥ ४१९॥
तैसें जें तेणें करावें। तो तेंचि आहे स्वभावें। मा कोणें कर्मीं वेष्टावें। कर्तेपणें ? ॥ ४२०॥
नुरेचि गगनावीण ठावो। नोहेचि समुद्रा प्रवाहो। नुठीचि ध्रुवा जावों। तैसें जाहालें ॥ ४२१॥
ऐसेनि अहंकृतिभावो। जयाचा बोधीं जाहला वावो। तऱ्ही देहा जंव निर्वाहो। तंव आथी कर्में ॥ ४२२॥
वारा जरी वाजोनि वोसरे। तरी तो डोल रुखीं उरे। कां सेंदें द्रुति राहे कापुरें। वेंचलेनी ॥ ४२३॥
कां सरलेया गीताचा समारंभु। न वचे राहवलेपणाचा क्षोभु। भूमी लोळोनि गेलिया अंबु। वोल थारे ॥ ४२४॥
अगा मावळलेनि अर्कें। संध्येचिये भूमिके। ज्योतिदीप्ति कौतुकें। दिसे जैसी ॥ ४२५॥
पैं लक्ष भेदिलियाहीवरी। बाण धांवेचि तंववरी। जंव भरली आथी उरी। बळाची ते ॥ ४२६॥

नाना चक्रीं भांडें जालें। तें कुलालें परतें नेलें। परी भ्रमेंचि तें मागिले। भोवंडिलेपणें ॥ ४२७॥
तैसा देहाभिमानु गेलिया। देह जेणें स्वभावें धनंजया। जालें तें अपैसया। चेष्टवीच तें ॥ ४२८॥
संकल्पेंवीण स्वप्न। न लावितां दांगीचें बन। न रचितां गंधर्वभुवन। उठी जैसें ॥ ४२९॥
आत्मयाचेनि उद्यमेंवीण। तैसें देहादिपंचकारण। होय आपणयां आपण। क्रियाजात ॥ ४३०॥
पैं प्राचीनसंस्कारवशें। पांचही कारणें सहेतुकें। कामवीजती गा अनेकें। कर्माकारें ॥ ४३१॥
तया कर्मामाजीं मग। संहरो आघवें जग। अथवा नवें चांग। अनुकरो ॥ ४३२॥
परी कुमुद कैसेनि सुके। कैसें तें कमळ फांके। हीं दोन्ही रवी न देखे। जयापरी ॥ ४३३॥
कां वीजु वर्षोनि आभाळ। ठिकरिया आतो भूतळ। अथवा करूं शाड्वळ। प्रसन्नावृष्टी ॥ ४३४॥
तरी तया दोहींतें जैसें। नेणिजेचि कां आकाशें। तैसा देहींच जो असे । विदेहदृष्टी ॥ ४३५॥
तो देहादिकीं चेष्टीं। घडतां मोडतां हे सृष्टी। न देखे स्वप्न दृष्टी। चेइला जैसा ॥ ४३६॥
येऱ्हवीं चामाचे डोळेवरी। जे देखती देहचिवरी। ते कीर तो व्यापारी। ऐसेंचि मानिती ॥ ४३७॥
कां तृणाचा बाहुला। जो आगरामेरें ठेविला। तो साचचि राखता कोल्हा। मानिजे ना ? ॥ ४३८॥
पिसें नेसलें कां नागवें। हें लोकीं येऊनि जाणावें। ठाणोरियांचें मवावें। आणिकीं घाय ॥ ४३९॥
कां महासतीचे भोग। देखे कीर सकळ जग। परी ते आगी ना आंग। ना लोकु देखे ॥ ४४०॥
तैसा स्वस्वरूपें उठिला। जो दृश्येंसी द्रष्टा आटला। तो नेणें काय राहटला। इंद्रियग्रामु ॥ ४४१॥
अगा थोरीं कल्लोळीं कल्लोळ साने। लोपतां तिरींचेनि जनें। एकीं एक गिळिलें हें मनें। मानिजे जऱ्ही ॥ ४४२॥
तऱ्ही उदकाप्रति पाहीं। कोण ग्रसितसे काई। तैसें पूर्णा दुजें नाहीं। जें तो मारी ॥ ४४३॥
सुवर्णाचिया चंडिका। सुवर्णशूळेंचि देखा। सुवर्णाचिया महिखा। नाशु केला ॥ ४४४॥
तो देवलवसिया कडा। व्यवहारु गमला फुडा। वांचूनि शूळ महिष चामुंडा। सुवर्णचि तें ॥ ४४५॥
पैं चित्रींचें जळ हुतांशु। तो दृष्टीचाचि आभासु। पटीं आगी वोलांशु। दोन्ही नाहीं ॥ ४४६॥
मुक्ताचें देह तैसें । हालत संस्कारवशें । तें देखोनि लोक पिसे । कर्ता म्हणती ॥ ४४७॥
आणि तयां करणेया आंतु। घडो तिहीं लोकां घातु। परी तेणें केला हे मातु। बोलों नये ॥ ४४८॥
अगा अंधारुचि देखावा तेजें। मग तो फेडी हें बोलिजे। । तैसें ज्ञानिया नाहीं दुजें। जें तो मारी ॥ ४४९॥
म्हणौनि तयाचि बुद्धी। नेणे पापपुण्याची गंधी। गंगा मीनलिया नदी। विटाळु जैसा ॥ ४५०॥
आगीसी आगी झगटलिया। काय पोळे धनंजया। । कीं शस्त्र रुपे आपणया। आपणचि ॥ ४५१॥
तैसें आपणपयापरतें। जो नेणें क्रियाजाततें। तेथ काय लिंपवी बुद्धीतें। तयाचिये ॥ ४५२॥
म्हणौनि कार्य कर्ता क्रिया। हें स्वरूपचि जाहलें जया। नाहीं शरीरादिकीं तया। कर्मी बंधु ॥ ४५३॥
जे कर्ता जीव विंदाणीं। काढूनि पांचही खाणी। घडित आहे करणीं। आउतीं दाहें ॥ ४५४॥
तेथ न्यावो आणि अन्यावो। हा द्विविधु साधूनि आवो। उभविता न लवी खेंवो। कर्मभुवनें ॥ ४५५॥
या थोराडा कीर कामा। विरजा नोहे आत्मा। परी म्हणसी हन उपक्रमा। हातु लावी ॥ ४५६॥
तो साक्षी चिद्रूपु। कर्मप्रवृत्तीचा संकल्पु। उठी तो कां निरोपु। आपणचि दे ? ॥ ४५७॥
तरी कर्मप्रवृत्तीहीलागीं। तया आयासु नाहीं आंगीं। जे प्रवृत्तीचेही उळिगीं। लोकुचि आथी ॥ ४५८॥
म्हणौनि आत्मयाचें केवळ। जो रूपचि जाहला निखिळ। तया नाहीं बंदिशाळ। कर्माचि हे ॥ ४५९॥
परी अज्ञानाच्या पटीं। अन्यथा ज्ञानाचें चित्र उठी। तेथ चितारणी हे त्रिपुटी। प्रसिद्ध जे कां ॥ ४६०॥

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ।

करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ॥१८॥

जें ज्ञान ज्ञाता ज्ञेय। हें जगाचें बीज त्रय। ते कर्माची निःसंदेह। प्रवृत्ति जाण ॥ ४६१॥
आतां ययाचि गा त्रया। व्यक्ति वेगळालिया। आइकें धनंजया। करूं रूप ॥ ४६२॥
तरी जीवसूर्यबिंबाचे। रश्मी श्रोत्रादिकें पांचें। धांवोनि विषयपद्माचे। फोडिती मढ ॥ ४६३॥
कीं जीवनृपाचे वारु उपलाणें। घेऊनि इंद्रियांचीं केकाणें। विषयदेशींचें नागवणें। आणीत जे ॥ ४६४॥
हें असो इहीं इंद्रियीं राहाटे। जें सुखदुःखेंसीं जीवा भेटे। तें सुषुप्तिकालीं वोहटे। जेथ ज्ञान ॥ ४६५॥
तया जीवा नांव ज्ञाता। आणि जें हें सांगितलें आतां। तेंचि एथ पंडुसुता। ज्ञान जाण ॥ ४६६॥
जें अविद्येचिये पोटीं। उपजतखेंवो किरीटी। आपणयातें वांटी। तिहीं ठायीं ॥ ४६७॥
आपुलिये धांवे पुढां। घालूनि ज्ञेयाचा गुंडा। उभारी मागिलीकडां। ज्ञातृत्वातें ॥ ४६८॥
मग ज्ञातया ज्ञेया दोघां। तो नांदणुकेचा बगा। माजीं जालेनि पैं गा। वाहे जेणें ॥ ४६९॥
ठाकूनि ज्ञेयाची शिंव। पुरे जयाची धांव। सकळ पदार्थां नांव। सूतसे जें ॥ ४७०॥
तें गा सामान्य ज्ञान। या बोअला नाहीं आन। ज्ञेयाचेंही चिन्ह। आइक आतां ॥ ४७१॥
तरी शब्दु स्पर्शु। रूप गंध रसु। हा पंचविध आभासु। ज्ञेयाचा तो ॥ ४७२॥
जैसें एकेचि चूतफळें। इंद्रियां वेगवेगळे। रसें वर्णें परीमळें। भेटिजे स्पर्शें ॥ ४७३॥
तैसें ज्ञेय तरी एकसरें। परी ज्ञान इंद्रियद्वारें। घे म्हणौनि प्रकारें। पांचें जालें ॥ ४७४॥
आणि समुद्रीं वोघाचें जाणें। सरे लाणीपासीं धावणें। कां फळीं सरे वाढणें। सस्याचें जेवीं ॥ ४७५॥
तैसें इंद्रियांच्या वाहवटीं। धांवतया ज्ञाना जेथ ठी। होय तें गा किरीटी। विषय ज्ञेय ॥ ४७६॥
एवं ज्ञातया ज्ञाना ज्ञेया। तिहीं रूप केलें धनंजया। हे त्रिविध सर्व क्रिया-। प्रवृत्ति जाण ॥ ४७७॥
जे शब्दादि विषय। हें पंचविध जें ज्ञेय। तेंचि प्रिय कां अप्रिय। एकेपरीचें ॥ ४७८॥
ज्ञान मोटकें ज्ञातया। दावी ना जंव धनंजया। तंव स्वीकारा कीं त्यजावया। प्रवर्तेचि तो ॥ ४७९॥
परी मीनातें देखोनि बकु। जैसा निधानातें रंकु। कां स्त्री देखोनि कामुकु। प्रवृत्ति धरी ॥ ४८०॥
जैसें खालारां धांवे पाणी। भ्रमर पुष्पाचिये घाणीं। नाना सुटला सांजवणीं। वत्सुचि पां ॥ ४८१॥
अगा स्वर्गींची उर्वशी । ऐकोनि जेंवी माणुसीं। वराता लावीजती आकाशीं। यागांचिया ॥ ४८२॥
पैं पारिवा जैसा किरीटी। चढला नभाचिये पोटीं। पारवी देखोनि लोटी। आंगचि सगळें ॥ ४८३॥
हें ना घनगर्जनासरिसा। मयूर वोवांडे आकाशा। ज्ञाता ज्ञेय देखोनि तैसा। धांवचि घे ॥ ४८४॥
म्हणौनि ज्ञान ज्ञेय ज्ञाता। हे त्रिविध गा पंडुसुता। होयचि कर्मा समस्तां। प्रवृत्ति येथ ॥ ४८५॥
परी तेंचि ज्ञेय विपायें। जरी ज्ञातयातें प्रिय होये। तरी भोगावया न साहे। क्षणही विलंबु ॥ ४८६॥
नातरी अवचटें। तेंचि विरुद्ध होऊनि भेटे। तरी युगांत वाटे। सांडावया ॥ ४८७॥
व्याळा कां हारा। वरपडा जालेया नरा। हरिखु आणि दरारा। सरिसाचि उठी ॥ ४८८॥
तैसें ज्ञेय प्रियाप्रियें। देखिलेनि ज्ञातया होये। मग त्याग स्वीकारीं वाहे। व्यापारातें ॥ ४८९॥
तेथ रागी प्रतिमल्लाचा। गोसांवी सर्वदळाचा। रथु सांडूनि पायांचा। होय जैसा ॥ ४९०॥
तैसें ज्ञातेपणें जें असे । तें ये कर्ता ऐसिये दशे। जेवितें बैसलें जैसें। रंधन करूं ॥ ४९१॥
कां भंवरेंचि केला मळा। वरकलुचि जाला अंकसाळा। नाना देवो रिगाला देऊळा-। चिया कामा ॥ ४९२॥
तैसा ज्ञेयाचिया हांवा। ज्ञाता इंद्रियांचा मेळावा। राहाटवी तेथ पांडवा। कर्ता होय ॥ ४९३॥
आणि आपण होउनी कर्ता। ज्ञाना आणी करणता। तेथें ज्ञेयचि स्वभावतां। कार्य होय ॥ ४९४॥

ऐसा ज्ञानाचिये निजगति। पालटु पडे गा सुमति। डोळ्याची शोभा रातीं। पालटे जैसी ॥ ४९५ ॥
कां अदृष्ट जालिया उदासु। पालटे श्रीमंताचा विलासु। पुनिवेपाठीं शीतांशु। पालटे जैसा ॥ ४९६ ॥
तैसा चाळितां करणें। ज्ञाता वेष्टिजे कर्तेपणें। तेथींचीं तियें लक्षणें। ऐक आतां ॥ ४९७ ॥
तरी बुद्धि आणि मन। चित्त अहंकार हन। हें चतुर्विध चिन्ह। अंतःकरणाचें ॥ ४९८ ॥
बाह्य त्वचा श्रवण। चक्षु रसना घ्राण। हें पंचविध जाण। इंद्रियें गा ॥ ४९९ ॥
तेथ आंतुले तंव करणें। कर्ता कर्तव्या घे उमाणें। मग तैं जरीं जाणें। सुखा येतें ॥ ५०० ॥
तरी बाहेरीलें तियेंही। चक्षुरादिकें दाहाही। उठौनि लवलाहीं। व्यापारा सूये ॥ ५०१ ॥
मग तो इंद्रियकदंबु। करविजे तंव राबु। जंव कर्तव्याचा लाभु। हातासि ये ॥ ५०२ ॥
ना तें कर्तव्य जरी दुःखें। फळेल ऐसें देखे। तो लावी त्यागमुखें। तियें दाहाही ॥ ५०३ ॥
मग फिटे दुःखाचा ठावो। तंव राहाटवी रात्रिदिवो। विकणवातें कां रावो। जयापरी ॥ ५०४ ॥
तैसेनि त्याग स्वीकारीं। वाहातां इंद्रियांची धुरी। ज्ञातयातें अवधारीं। कर्ता म्हणिपे ॥ ५०५ ॥
आणि कर्तयाच्या सर्व कर्मीं। आउतांचिया परी क्षमीं। म्हणौनि इंद्रियांतें आम्ही। करणें म्हणों ॥ ५०६ ॥
आणि हेचि करणेंवरी। कर्ता क्रिया ज्या उभारी। तिया व्यापे तें अवधारीं। कर्म एथ ॥ ५०७ ॥
सोनाराचिया बुद्धि लेणें। व्यापे चंद्रकरीं चांदणें। कां व्यापे वेल्हाळपणें। वेली जैसी ॥ ५०८ ॥
नाना प्रभा व्यापे प्रकाशु। गोडिया इक्षुरसु। हें असो अवकाशु। आकाशीं जैसा ॥ ५०९ ॥
तैसें कर्तयाचिया क्रिया। व्यापलें जें धनंजया। तें कर्म गा बोलावया। आन नाहीं ॥ ५१० ॥
एवं कर्म कर्ता करण । या तिहींचेंही लक्षण। सांगितलें तुज विचक्षण-। शिरोमणी ॥ ५११ ॥
एथ ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय। हें कर्माचें प्रवृत्तित्रय। तैसेंचि कर्ता करण कार्य। हा कर्मसंचयो ॥ ५१२ ॥
वन्हीं ठेविला असे धूमु। आथी बीजीं जेवीं द्रुमु। कां मनीं जोडे कामु। सदा जैसा ॥ ५१३ ॥
तैसा कर्ता क्रिया करणीं। कर्माचें आहे जिंतवणीं। सोनें जैसें खाणी। सुवर्णाचिये ॥ ५१४ ॥
म्हणौनि हें कार्य मी कर्ता। ऐसें आथि जेथ पंडुसुता। तेथ आत्मा दूरी समस्ता। क्रियांपासीं ॥ ५१५ ॥
यालागीं पुढतपुढती। आत्मा वेगळाचि सुमती। आतां असो हे किती। जाणतासि तूं ॥ ५१६ ॥

ज्ञानं कर्म च कर्ताच त्रिधैव गुणभेदतः ।
प्रोच्यते गुणसङ्ख्याने यथावच्छृणु तान्यपि ॥ १९ ॥

परी सांगितलें जें ज्ञान। कर्म कर्ता हन। ते तिन्ही तिहीं ठायीं भिन्न। गुणीं आहाती ॥ ५१७ ॥
म्हणौनि ज्ञाना कर्मा कर्तया। पातेजों नये धनंजया। जे दोनी बांधती सोडावया। एकचि प्रौढ ॥ ५१८ ॥
तें सात्विक ठाऊवें होये। तो गुणभेदु सांगों पाहे। जो सांख्यशास्त्रीं आहे। उवाइला ॥ ५१९ ॥
जें विचारक्षीरसमुद्र। स्वबोधकुमुदिनीचंद्र। ज्ञानडोळसां नरेंद्र। शास्त्रांचा जें ॥ ५२० ॥
कीं प्रकृतिपुरुष दोनी। मिसळलीं दिवोरजनीं। तियें निवडितां त्रिभुवनीं। मार्तंडु जें ॥ ५२१ ॥
जेथ अपारा मोहराशी। तत्वाच्या मापीं चोविसीं। उगाणा घेऊनि परेशीं। सुरवाडिजे ॥ ५२२ ॥
अर्जुना तें सांख्यशास्त्र। पढे जयाचें स्तोत्र। तें गुणभेदचरित्र। ऐसें आहे ॥ ५२३ ॥
जे आपुलेनि आंगिकें। त्रिविधपणाचेनि अंकें। दृश्यजात तितुकें। अंकित केलें ॥ ५२४ ॥
एवं सत्वरजतमा। तिहींची एवढी असे महिमा। जें त्रैविध्य आदी ब्रह्मा। अंतीं कृमी ॥ ५२५ ॥
परी विश्वींची आघवी मांदी। जेणें भेदलेनि गुणभेदीं। पडिली तें तंव आदी। ज्ञान सांगो ॥ ५२६ ॥

जे दिठी जरी चोख कीजे। तरी भलतेंही चोख सुजे। तैसें ज्ञानें शुद्धें लाहिजे। सर्वही शुद्ध ॥ ५२७॥
म्हणौनि तें सात्विक ज्ञान। आतां सांगों दे अवधान। कैवल्यगुणनिधान। श्रीकृष्ण म्हणे ॥ ५२८॥

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ॥ २०॥

तरी अर्जुना गा तें फुडें। सात्विक ज्ञान चोखडें। जयाच्या उदयीं ज्ञेय बुडे। ज्ञातेनिसीं ॥ ५२९॥
जैसा सूर्य न देखे अंधारें। सरिता नेणिजती सागरें। कां कवळिलिया न धरे। आत्मच्छाया ॥ ५३०॥
तयापरी जया ज्ञाना। शिवादि तृणावसाना। इया भूतव्यक्ति भिन्ना। नाडळती ॥ ५३१॥
जैसें हातें चित्र पाहातां। होय पाणियें मीठ धुतां। कां चेवोनि स्वप्ना येतां। जैसें होय ॥ ५३२॥
तैसें ज्ञानें जेणें। करितां ज्ञातव्यातें पाहाणें। जाणता ना जाणणें। जाणावें उरे ॥ ५३३॥
पैं सोनें आटूनि लेणीं। न काढिती आपुलिया आयणी। कां तरंग न घेपती पाणी। गाळूनि जैसें ॥ ५३४॥
तैसी जया ज्ञानाचिया हाता। न लगेचि दृश्यपथा। तें ज्ञान जाण सर्वथा। सात्विक गा ॥ ५३५॥
आरिसा पाहों जातां कोडें। जैसें पाहातेंचि कां रिगे पुढें। तैसें ज्ञेय लोटोनि पडे। ज्ञाताचि जें ॥ ५३६॥
पुढती तेंचि सात्विक ज्ञान। जें मोक्षलक्ष्मीचें भुवन। हें असो ऐक चिन्ह। राजसाचें ॥ ५३७॥

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान् ।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ॥ २१॥

तरी पार्था परीयेस। तें ज्ञान गा राजस। जें भेदाची कांस। धरूनि चाले ॥ ५३८॥
विचित्रता भूतांचिया। आपण आंतोनि ठिकरिया। बहु चकै ज्ञातया। आणिली जेणें ॥ ५३९॥
जैसें साचा रूपाआड। घालूनि विसराचें कवाड। मग स्वप्नाचें काबाड। ओपी निद्रा ॥ ५४०॥
तैसें स्वज्ञानाचिये पौळी। बाहेरि मिथ्या महीं खळीं। तिहीं अवस्थांचिया वह्याळीं। दावी जें जीवा ॥ ५४१॥
अलंकारपणें झांकलें। बाळा सोनें कां वायां गेलें। तैसें नामीं रूपीं दुरावलें। अद्वैत जया ॥ ५४२॥
अवतरली गाडग्यां घडां। पृथ्वी अनोळख जाली मूढां। वन्हि जाला कानडा। दीपत्वासाठीं ॥ ५४३॥
कां वस्त्रपणाचेनि आरोपें। मूर्खाप्रति तंतु हारपे। नाना मुग्धा पटु लोपे। दाऊनि चित्र ॥ ५४४॥
तैशी जया ज्ञाना। जाणोनि भूतव्यक्ती भिन्ना। ऐक्यबोधाची भावना। निमोनि गेली ॥ ५४५॥
मग इंधनीं भेदला अनळु। फुलांवरी परीमळु। कां जळभेदें शकलु। चंद्रु जैसा ॥ ५४६॥
तैसें पदार्थभेद बहुवस। जाणोनि लहानथोर वेष। आंतलें तें राजस। ज्ञान येथ ॥ ५४७॥
आतां तामसाचेंही लिंग। सांगेन तें वोळख चांग। डावलावया मातंग-। सदन जैसें ॥ ५४८॥

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम् ।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ॥ २२॥

तरी किरीटी जें ज्ञान। हिंडे विधीचेनि वस्त्रेंहीन। श्रुति पाठमोरी नग्न। म्हणौनि तया ॥ ५४९॥
येरींही शास्त्र बटिकरीं। जें निंदेचे विटाळवरी। बोळविलेंसे डोंगरीं। म्लेंच्छधर्माच्या ॥ ५५०॥

जें गा ज्ञान ऐसें। गुणग्रहें तामसें। घेतलें भवें पिसें। होऊनियां ॥ ५५१॥
जें सोयरिकें बाधु नेणें। पदार्थीं निषेधु न म्हणे। निरोविलें जैसें सुणें । शून्यग्रामीं ॥ ५५२॥
तया तोंडीं जें नाडळे। कां खातां जेणें पोळे। तेंचि येक वाळे। येर घेणेंचि ॥ ५५३॥
पैं सोनें चोरितां उंदिरु। न म्हणे थरुविथरु। नेणे मांसखाइरु। काळें गोरें ॥ ५५४॥
नाना वनामाजीं बोहरी। कडसणी जेवीं न करी। कां जीत मेलें न विचारी। बैसतां माशी ॥ ५५५॥
अगा वांता कां वाढिलेया। साजुक कां सडलिया। विवेकु कावळिया। नाहीं जैसा ॥ ५५६॥
तैसें निषिद्ध सांडूनि द्यावें। कां विहित आदरें घ्यावें। हें विषयांचेनि नांवें। नेणेंचि जें ॥ ५५७॥
जेतुलें आड पडे दिठी। तेतुलें घेचि विषयासाठीं। मग तें स्त्री-द्रव्य वाटी । शिश्नोदरां ॥ ५५८॥
तीर्थातीर्थ हे भाख। उदकीं नाहीं सनोळख। तृषा वोळे तेंचि सुख। वांचूनियां ॥ ५५९॥
तयाचिपरी खाद्याखाद्य। न म्हणे निंद्यानिंद्य। तोंडा आवडे तें मेध्य। ऐसाचि बोधु ॥ ५६०॥
आणि स्त्रीजात तितुकें। त्वचेंद्रियेंचि वोळखे। तियेविषयीं सोयरिकें। एकचि बोधु ॥ ५६१॥
पैं स्वार्थीं जें उपकरे। तयाचि नाम सोयिरें। देहसंबंधु न सरे। जिये ज्ञानीं ॥ ५६२॥
मृत्यूचें आघवेंचि अन्न। आघवेंचि आगी इंधन। तैसें जगचि आपलें धन। तामसज्ञाना ॥ ५६३॥
ऐसेनि विश्व सकळ। जेणें विषयोचि मानिलें केवळ। तया एक जाण फळ। देहभरण ॥ ५६४॥
आकाशपतिता नीरा। जैसा सिंधुचि येक थारा। तैसें कृत्यजात उदरा-। लागिंचि बुझे ॥ ५६५॥
वांचूनि स्वर्गु नरकु आथी। तया हेतु प्रवृत्ति निवृत्ती। इये आघवियेचि राती। जाणिवेची जें ॥ ५६६॥
जें देहखंडा नाम आत्मा। ईश्वर पाषाणप्रतिमा। ययापरौती प्रमा। ढळों नेणें ॥ ५६७॥
म्हणे पडिलेनि शरीरें। केलेनिसीं आत्मा सरे। मा भोगावया उरे। कोण वेषें ॥ ५६८॥
ना ईश्वरु पाहातां आहे। तो भोगवी हें जरी होये। तरी देवचि खाये। विकूनियां ॥ ५६९॥
गांवींचें देवळेश्वर। नियामकचि होती साचार। तरी देशींचे डोंगर। उगे कां असती ? ॥ ५७०॥
ऐसा विपायें देवो मानिजे। तरी पाषाणमात्रचि जाणिजे। आणि आत्मा तंव म्हणिजे। देहातेंचि ॥ ५७१॥
येरें पापपुण्यादिकें। तें आघवेंचि करोनि लटिकें। हित मानी अग्निमुखें। चरणें जें कां ॥ ५७२॥
जें चामाचे डोळे दाविती। जें इंद्रियें गोडी लाविती। तेंचि साच हे प्रतीती। फुडी जया ॥ ५७३॥
किंबहुना ऐसी प्रथा। वाढती देखसी पार्था। धूमाची वेली वृथा। आकाशीं जैसी ॥ ५७४॥
कोरडा ना वोला। उपेगा आथी गेला। तो वाढोनि मोडला। भेंडु जैसा ॥ ५७५॥
नाना उंसांचीं कणसें। कां नपुंसकें माणुसें। वन लागलें जैसें। साबरीचें ॥ ५७६॥
नातरी बाळकाचें मन। कां चोराघरींचें धन। अथवा गळास्तन। शेळियेचे ॥ ५७७॥
तैसें जें वायाणें। वोसाळ दिसे जाणणें। तयातें मी म्हणें। तामस ज्ञान ॥ ५७८॥
तेंही ज्ञान इया भाषा। बोलिजे तो भावो ऐसा। जात्यंधाचा कां जैसा। डोळा वाडु ॥ ५७९॥
कां बधिराचे नीट कान। अपेया नाम पान। तैसें आडनांव ज्ञान। तामसा तया ॥ ५८०॥
हें असो किती बोलावें। तरी ऐसें जें देखावें। तें ज्ञान नोहे जाणावें। डोळस तम ॥ ५८१॥
एवं तिहीं गुणीं। भेदलें यथालक्षणीं। ज्ञान श्रोतेशिरोमणी। दाविलें तुज ॥ ५८२॥
आतां याचि त्रिप्रकारा। ज्ञानाचेनि धनुर्धरा। प्रकाशें होती गोचरा। कर्तयांच्या क्रिया ॥ ५८३॥
म्हणौनि कर्म पैं गा। अनुसरे तिहीं भागां। मोहरे जालिया वोघा। तोय जैसे ॥ ५८४॥
तेंचि ज्ञानत्रयवशें। त्रिविध कर्म जें असे । तेथ सात्विक तंव ऐसें। परीसे आधीं ॥ ५८५॥

नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम् ।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ॥ २३॥

तरी स्वाधिकाराचेनि मार्गें। आलें जें मानिलें आंगें। पतिव्रतेचेनि परीष्वंगें। प्रियातें जैसें ॥ ५८६॥
सांवळ्या आंगा चंदन। प्रमदालोचनीं अंजन। तैसें अधिकारासी मंडण। नित्यपणें जें ॥ ५८७॥
तें नित्य कर्म भलें। होय नैमित्तिकीं सावाइलें। सोनयासि जोडलें। सौरभ्य जैसें ॥ ५८८॥
आणि आंगा जीवाची संपत्ती। वेंचूनि बाळाची करी पाळती। परी जीवें उबगणें हें स्थिती। न पाहे माय ॥ ५८९॥
तैसें सर्वस्वें कर्म अनुष्ठी। परी फळ न सूये दिठी। उखिती क्रिया पैठी। ब्रह्मींचि करी ॥ ५९०॥
आणि प्रिय आलिया स्वभावें। शंबळ उरे वेंचे ठाउवें । नव्हे तैसें सत्प्रसंगें करावें। पारुषे जरी ॥ ५९१॥
तरी अकरणाचेनि खेदें। द्वेषातें जीवीं न बांधे। जालियाचेनि आनंदें। फुंजों नेणें ॥ ५९२॥
ऐसऐसिया हातवटिया। कर्म निफजे जें धनंजया। जाण सात्विक हें तया। गुणनाम गा ॥ ५९३॥
ययावरी राजसाचें। लक्षण सांगिजेल साचें। न करीं अवधानाचें। वाणेंपण ॥ ५९४॥

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः ।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥ २४॥

तरी घरीं मातापितरां। धड बोली नाहीं संसारा। येर विश्व भरी आदरा। मूर्खु जैसा ॥ ५९५॥
का तुळशीचिया झाडा। दुरूनि न घापें सिंतोडा। द्राक्षीचिया तरी बुडा। दूधचि लाविजे ॥ ५९६॥
तैसी नित्यनैमित्तिकें। कर्में जियें आवश्यकें। तयांचेविषयीं न शके। बैसला उठूं ॥ ५९७॥
येरां काम्याचेनि तरी नांवें। देह सर्वस्व आघवें। वेचितांही न मनवे। बहु ऐसें ॥ ५९८॥
अगा देवढी वाढी लाहिजे। तेथ मोल देतां न धाइजे। पेरितां पुरें न म्हणिजे। बीज जेवीं ॥ ५९९॥
कां परीसु आलिया हातीं। लोहालागीं सर्वसंपत्ती। वेचितां ये उन्नती। साधकु जैसा ॥ ६००॥
तैसीं फळें देखोनि पुढें। काम्यकर्में दुवाडें। करी परी तें थोकडें। केलेंही मानी ॥ ६०१॥
तेणें फळकामुकें। यथाविधी नेटकें । काम्य कीजे तितुकें। क्रियाजात ॥ ६०२॥
आणि तयाही केलियाचें। तोंडीं लावी दौंडीचें। कर्मी या नांवपाटाचें। वाणें सारी ॥ ६०३॥
तैसा भरे कर्माहंकारु। मग पिता अथवा गुरु। ते न मनी काळज्वरु। औषध जैसें ॥ ६०४॥
तैसेनि साहंकारें। फळाभिलाषियें नरें। कीजे गा आदरें। जें जें कांहीं ॥ ६०५॥
परी तेंही करणें बहुवसा। वळघोनि करी सायासा। जीवनोपावो कां जैसा। कोल्हाटियांचा ॥ ६०६॥
एका कणालागीं उंदिरु। आसका उपसे डोंगरु। कां शेवाळोद्देशें दर्दुरु। समुद्र डहुळी ॥ ६०७॥
पैं भिकेपरतें न लाहे। तऱ्ही गारुडी सापु वाहे। काय कीजे शीणुचि होये। गोडु येकां ॥ ६०८॥
हे असो परमाणूचेनि लाभें। पाताळ लंघिती वोळंबे। तैसें स्वर्गसुखलोभें। विचंबणें जें ॥ ६०९॥
तें काम्य कर्म सक्लेश। जाणावें येथ राजस। आतां चिन्ह परिस। तामसाचें ॥ ६१०॥

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनपेक्ष्य च पौरुषम् ।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥ २५॥

तरी तें गा तामस कर्म। जें निंदेचें काळें धाम। निषेधाचें जन्म। सांच जेणें ॥ ६११॥
जें निपजविल्यापाठीं। कांहींच न दिसे दिठी। रेघ काढलिया पोटीं। तोयाचे जेवीं ॥ ६१२॥
कां कांजी घुसळलिया। कां राखोंडी फुंकलिया। कांहीं न दिसे गाळिलिया। वाळुघाणा ॥ ६१३॥
नाना उपणिलिया भूंस। कां विंधिलिया आकाश। नाना मांडिलिया पाश। वारयासी ॥ ६१४॥
हें आवघेंचि जैसें। वांझें होऊनि नासे। जें केलिया पाठीं तैसें। वायांचि जाय ॥ ६१५॥
येऱ्हवीं नरदेहाही येवढें। धन आटणीये पडे। जें कर्म निफजवितां मोडे। जगाचें सुख ॥ ६१६॥
जैसा कमळवनीं फांसु। काढिलिया कांटसु। आपण झिजे नाशु। कमळां करी ॥ ६१७॥
कां आपण आंगें जळे। आणि नागवी जगाचे डोळे। पतंगु जैसा सळें। दीपाचेनि ॥ ६१८॥
तैसें सर्वस्व वायां जावो। वरी देहाही होय घावो। परी पुढिलां अपावो। निफजविजे जेणें ॥ ६१९॥
माशी आपणयातें गिळवी। परी पुढीला वांती शिणवी। तें कश्मळ आठवी। आचरण जें ॥ ६२०॥
तेंही करावयो दोषें। मज सामर्थ्य असे कीं नसे । हेंहीं पुढील तैसें। न पाहतां करी ॥ ६२१॥
केवढा माझा उपावो। करितां कोण प्रस्तावो। केलियाही आवो। काय येथ ॥ ६२२॥
इये जाणिवेची सोये। अविवेकाचेनि पायें। पुसोनियां होये। साटोप कर्मीं ॥ ६२३॥
आपला वसौटा जाळुनी। बिसाटे जैसा वन्ही। कां स्वमर्यादा गिळोनि। सिंधु उठी ॥ ६२४॥
मग नेणें बहु थोडें। न पाहे मागें पुढें। मार्गामार्ग येकवढें। करीत चाले ॥ ६२५॥
तैसें कृत्याकृत्य सरकटित। आपपर नुरवित। कर्म होय तें निश्चित। तामस जाण ॥ ६२६॥
ऐसी गुणत्रयभिन्ना। कर्माची गा अर्जुना। हे केली विवंचना। उपपत्तींसीं ॥ ६२७॥
आतां ययाचि कर्मा भजतां। कर्माभिमानिया कर्ता। तो जीवुही त्रिविधता। पातला असे ॥ ६२८॥
चतुराश्रमवशें। एकु पुरुषु चतुर्धा दिसे। कर्तया त्रैविध्य तैसें। कर्मभेदें ॥ ६२९॥
तरी तयां तिहीं आंतु। सात्विक तंव प्रस्तुतु। सांगेन दत्तचित्तु। आकर्णीं तूं ॥ ६३०॥

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः ।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते ॥ २६॥

तरी फळोद्देशें सांडिलिया। वाढती जेवीं सरळिया। शाखा कां चंदनाचिया। बावन्नया ॥ ६३१॥
कां न फळतांही सार्थका। जैसिया नागलतिका। तैसिया करी नित्यादिकां। क्रिया जो कां ॥ ६३२॥
परी फळशून्यता। नाहीं तया विफळता। पैं फळासीचि पंडुसुता। फळें कायिसी ॥ ६३३॥
आणि आदरें करी बहुवसें। परी कर्ता मी हें नुमसे। वर्षाकाळींचें जैसें। मेघवृंद ॥ ६३४॥
तेवींचि परमात्मलिंगा। समर्पावयाजोगा। कर्मकलापु पैं गा। निपजावया ॥ ६३५॥
तया काळातें नुलंघणें। देशशुद्धिही साधणें। कां शास्त्रांच्या वातीं पाहणें। क्रियानिर्णयो ॥ ६३६॥
वृत्ति करणें येकवळा। चित्त जावों न देणें फळा। नियमांचिया सांखळा। वाहणें सदा ॥ ६३७॥
हा निरोधु साहावयालागीं। धैर्याचिया चांगचांगीं। चिंतवणी जिती आंगीं। वाहे जो कां ॥ ६३८॥
आणि आत्मयाचिये आवडी। कर्में करितां वरपडीं। देहसुखाचिये परवडीं। येवों न लाहे ॥ ६३९॥
आळसा निद्रा दुऱ्हावे। क्षुधा न बाणवे। सुरवाडु न पावे। आंगाचा ठावो ॥ ६४०॥
तंव अधिकाधिक। उत्साहो धरी आगळीक। सोनें जैसें पुटीं तुक। तुटलिया कसीं ॥ ६४१॥
जरी आवडी आथी साच। तरी जीवितही सलंच। आगीं घालितां रोमांच। देखिजती सतिये ॥ ६४२॥

मा आत्मया येवढीया प्रिया। वालभेला जो धनंजया। देहही सिदतां तया। काय खेदु होईल ? ॥ ६४३॥
म्हणौनि विषयसुरवाडु तुटे। जंव जंव देहबुद्धि आटे। तंव तंव आनंदु दुणवटे। कर्मी जया ॥ ६४४॥
ऐसेनि जो कर्म करी। आणि कोणे एके अवसरीं। तें ठाके ऐसी परी। वाहे जरी ॥ ६४५॥
तरी कडाडीं लोटला गाडा। तो आपणपें न मनी अवघडा। तैसा ठाकलेनिही थोडा। नोहे जो कां ॥ ६४६॥
नातरी आदरिलें। अव्यंग सिद्धी गेलें। तरी तेंही जिंतिलें। मिरवूं नेणें ॥ ६४७॥
इया खुणा कर्म करितां। देखिजे जो पंडुसुता। तयातें म्हणिपे तत्त्वतां। सात्विकु कर्ता ॥ ६४८॥
आतां राजसा कर्तेया। वोळखणें हें धनंजया। जे अभिलाषा जगाचिया। वसौटा तो ॥ ६४९॥

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः ।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः ॥ २७॥

जैसा गावींचिया कश्मळा। उकरडा होय येकवळा। कां स्मशानीं अमंगळा। आघवयांची ॥ ६५०॥
तया परी जो अशेषा। विश्वाचिया अभिलाषा। पायपाखाळणिया दोषां। घरटा जाला ॥ ६५१॥
म्हणौनि फळाचा लागु। देखे जिये असलगु। तिये कर्मी चांगु। रोहो मांडी ॥ ६५२॥
आणि आपण जालिये जोडी। उपखों नेदी कवडी। क्षणक्षणा कुरोंडी। जीवाची करी ॥ ६५३॥
कृपणु चित्तीं ठेवा आपुला। तैसा दक्षु पराविया माला। बकु जैसा खुतला। मासेयासी ॥ ६५४॥
आणि गोंवी गेलिया जवळी। झगटलिया अंग फाळी। फळें तरी आंतु पोळी। बोरांटी जैसी ॥ ६५५॥
तैसें मनें वाचा कायें। भलतया दुःख देतु जाये। स्वार्थु साधितां न पाहे। पराचें हित ॥ ६५६॥
तेवींचि आंगें कर्मी। आचरणें नोहे क्षमी। न निघे मनोधर्मी। अरोचकु ॥ ६५७॥
कनकाचिया फळा। आंतु माज बाहेरी मौळा। तैसा सबाह्य दुबळा। शुचित्वें जो ॥ ६५८॥
आणि कर्मजात केलिया। फळ लाहे जरी धनंजया। तरी हरिखें जगा यया। वांकुलिया वाये ॥ ६५९॥
अथवा जें आदरिलें। हीनफळ होय केलें। तरीं शोकें तेणें जिंतिलें। धिक्कारों लागे ॥ ६६०॥
कर्मी राहाटी ऐसी। जयातें होती देखसी। तोचि जाण त्रिशुद्धीसी। राजस कर्ता ॥ ६६१॥
आतां यया पाठीं येरु। जो कुकर्माचा आगरु। तोही करूं गोचरु। तामस कर्ता ॥ ६६२॥

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः ।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ॥ २८॥

तरी मियां लागलिया कैसें। पुढील जळत असे । हें नेणिजे हुताशें । जियापरी ॥ ६६३॥
पैं शस्त्रें मियां तिखटें । नेणिजे कैसेनि निवटे। कां नेणिजे काळकूटें। आपुलें केलें ॥ ६६४॥
तैसा पुढीलया आपुलया। घातु करीत धनंजया। आदरी वोखटिया। क्रिया जो कां ॥ ६६५॥
तिया करितांही वेळीं। काय जालें हें न सांभाळी। चळला वायु वाहटुळी। चेष्टे तैसा ॥ ६६६॥
पैं करणिया आणि जया। मेळु नाहीं धनंजया। तो पाहुनी पिसेया। कैंचीं त्राय ? ॥ ६६७॥
आणि इंद्रियांचें वोगरिलें। चरोनि राखे जो जियालें। बैलातळीं लागलें। गोचिड जैसें ॥ ६६८॥
हांसया रुदना वेळु। नेणतां आदरी बाळु। राहाटे उच्छृंखळु। तयापरी ॥ ६६९॥
जो प्रकृती आंतलेपणें। कृत्याकृत्यस्वादु नेणे। फुगे केरें धालेपणें। उकरडा जैसा ॥ ६७०॥

म्हणौनि मान्याचेनि नांवें। ईश्वराही परी न खालवे। स्तब्धपणें न मनवे। डोंगरासी ॥ ६७१॥
आणि मन जयाचें विषकल्लोळीं। राहाटी फुडी चोरिली। दिठी कीर ते वोली। पण्यांगनेची ॥ ६७२॥
किंबहुना कपटाचें। देहचि वळिलें तयाचें। तें जिणें कीं जुंवाराचें। टिटेघर ॥ ६७३॥
नोहे तयाचा प्रादुर्भावो। तो साभिलाष भिल्लांचा गांवो। म्हणौनि नये येवों जावों। तया वाटा ॥ ६७४॥
आणि आणिकांचें निकें केलें। विरु होय जया आलें। जैसें अपेय पया मिनलें। लवण करी ॥ ६७५॥
कां हींव ऐसा पदार्थु। घातलिया आगीआंतु। तेंचि क्षणीं धडाडितु। अग्नि होय ॥ ६७६॥
नाना सुद्रव्यें गोमटीं। जालिया शरीरीं पैठीं। होऊनि ठाती किरीटी। मळुचि जेवीं ॥ ६७७॥
तैसें पुढिलाचें बरवें। जयाच्या भीतरीं पावे। आणि विरुद्धचि आघवें। होऊनि निगे ॥ ६७८॥
जो गुण घे दे दोख। अमृताचें करी विख। दूध पाजलिया देख। व्याळु जैसा ॥ ६७९॥
आणि ऐहिकीं जियावें। जेणें परत्रा साच यावें। तें उचित कृत्य पावे। अवसरीं जिये ॥ ६८०॥
तेव्हां जया आपैसी। निद्रा ये ठेविली ऐसी। दुर्व्यवहारीं जैसी। विटाळें लोटे ॥ ६८१॥
पैं द्राक्षरसा आम्ररसा। वेळे तोंड सडे वायसा। कां डोळे फुटती दिवसा। डुडुळाचे ॥ ६८२॥
तैसा कल्याणकाळु पाहे। तैं तयातें आळसु खाये। ना प्रमादीं तरी होये। तो म्हणे तैसें ॥ ६८३॥
जेवींचि सागराच्या पोटीं। जळे अखंड आगिठी । तैसा विषादु वाहे गांठीं। जिवाचिये जो ॥ ६८४॥
लेंडोराआगीं धूमावधि। कां अपाना आंगीं दुर्गंधि। तैसा जो जीवितावधि। विषादें केला ॥ ६८५॥
आणि कल्पांताचिया पारा। वेगळेंही जो वीरा। सूत्र धरी व्यापारा। साभिलाषा ॥ ६८६॥
अगा जगाही परौती। शुचा वाहे पैं चित्तीं। करितां विषीं हातीं। तृणही न लगे ॥ ६८७॥
ऐसा जो लोकाआंतु। पापपुंजु मूर्तु। देखसी तो अव्याहतु। तामसु कर्ता ॥ ६८८॥
एवं कर्म कर्ता ज्ञान। या तिहींचें त्रिधा चिन्ह। दाविलें तुज सुजन। चक्रवर्ती ॥ ६८९॥

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु ।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनञ्जय ॥ २९॥

आतां अविद्येचिया गांवीं। मोहाची वेढूनि मदवी। संदेहाचीं आघवीं। लेऊनि लेणीं ॥ ६९०॥
आत्मनिश्चयाची बरव। जया आरिसां पाहे सावयव। तिये बुद्धीचीही धांव। त्रिधा असे ॥ ६९१॥
अगा सत्वादि गुणीं इहीं। कायी एक तिहीं ठायीं। न कीजेचि येथ पाहीं। जगामाजीं ॥ ६९२॥
आगी न वसतां पोटीं। कवण काष्ठ असे सृष्टीं। तैसें तें कैंचें दृश्यकोटीं। त्रिविध जें नोहे ॥ ६९३॥
म्हणौनि तिहीं गुणीं। बुद्धी केली त्रिगुणी। धृतीसिही वांटणी। तैसीचि असे ॥ ६९४॥
तेंचि येक वेगळालें। यथा चिन्हीं अळंकारलें। सांगिजैल उपाइलें। भेदलेपणें ॥ ६९५॥
परी बुद्धि धृति इयां। दोहीं भागामाजीं धनंजया। आधीं रूप बुद्धीचिया। भेदासि करूं ॥ ६९६॥
तरी उत्तमा मध्यमा निकृष्टा। संसारासि गा सुभटा। प्राणियां येतिया वाटा। तिनी आथी ॥ ६९७॥
जे अकरणीय काम्य निषिद्ध। ते हे मार्ग तिन्ही प्रसिद्ध। संसारभयें सबाध। जीवां ययां ॥ ६९८॥

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥ ३०॥

म्हणौनि अधिकारें मानिलें। जें विधीचेनि वोघें आलें। तें एकचि येथ भलें। नित्य कर्म ॥ ६९९॥
तेंचि आत्मप्राप्ति फळ। दिठी सूनि केवळ। कीजे जैसें कां जळ। सेविजे ताहनें ॥ ७००॥
येतुलेनि तें कर्म। सांडी जन्मभय विषम। करूनि दे उगम। मोक्षसिद्धि ॥ ७०१॥
ऐसें करी तो भला। संसारभयें सांडिला। करणीयत्वें आला। मुमुक्षुभागा ॥ ७०२॥
तेथ जे बुद्धि ऐसा। बळिया बांधे भरंवसा। मोक्षु ठेविला ऐसा। जोडेल येथ ॥ ७०३॥
म्हणौनि निवृत्तीची मांडिली। सूनि प्रवृत्तितळीं। इये कर्मीं बुडकुळी। द्यावीं कीं ना ? ॥ ७०४॥
तृषार्ता उदकें जिणें। कां पुरीं पडलिया पोहणें। अंधकूपीं गति किरणें। सूर्याचेनि ॥ ७०५॥
नाना पथ्येंसीं औषध लाहे। तरी रोगें दाटलाही जिये। का मीना जिव्हाळा होये। जळाचा जरी ॥ ७०६॥
तरी तयाच्या जीविता। नाहीं जेवीं अन्यथा। तैसें कर्मीं इये वर्ततां। जोडेचि मोक्षु ॥ ७०७॥
हें करणीयाचिया कडे। जें ज्ञान आथी चोखडें। आणि अकरणीय हें फुडें। ऐसें जाण ॥ ७०८॥
जीं तिथें काम्यादिकें। संसारभयदायकें। अकृत्यपणाचें आंबुखें। पडिलें जयां ॥ ७०९॥
तिये कर्मीं अकार्यीं। जन्ममरणसमयीं। प्रवृत्ति पळवी पायीं। मागिलींचि ॥ ७१०॥
पैं आगीमाजीं न रिघवे। अथावीं न घालवे। धगधगीत नागवे। शूळ जेवीं ॥ ७११॥
कां काळियानाग धुंधुवातु। देखोनि न घालवे हातु। न वचवे खोपेआंतु। वाघाचिये ॥ ७१२॥
तैसें कर्म अकरणीय। देखोनि महाभय। उपजे निःसंदेह। बुद्धी जिये ॥ ७१३॥
वाढिलें रांधूनि विखें। तेथें जाणिजे मृत्यु न चुके। तेवीं निषेधीं कां देखे। बंधातें जे ॥ ७१४॥
मग बंधभयभरितीं। तियें निषिद्धीं प्राप्ती। विनियोगु जाणे निवृत्ती। कर्माचिये ॥ ७१५॥
ऐसेनि कार्याकार्यविवेकी। जे प्रवृत्ति निवृत्ति मापकी। खरा कुडा पारखी। जियापरी ॥ ७१६॥
तैसी कृत्याकृत्यशुद्धी। बुझे जे निरवधी। सात्विक म्हणिपे बुद्धी। तेचि तूं जाण ॥ ७१७॥

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥ ३१॥

आणि बकाच्या गांवीं। घेपे क्षीरनीर सकलवी। कां अहोरात्रींची गोंवी। आंधळें नेणे ॥ ७१८॥
जया फुलाचा मकरंदु फावे। तो काष्ठें कोरूं धांवे। परी भ्रमरपणा नव्हे। अव्हांटा जेवीं ॥ ७१९॥
तैसीं इयें कार्याकार्यें। धर्माधर्मरूपें जियें। तियें न चोजवितां जाये। जाणती जे कां ॥ ७२०॥
अगा डोळांवीण मोतियें। घेतां पाडु मिळे विपायें। न मिळणें तें आहे। ठेविलें तेथें ॥ ७२१॥
तैसें अकरणीय अवचटें। नोडवे तरीच लोटे। येऱ्हवीं जाणें एकवटें। दोन्ही जे कां ॥ ७२२॥
ते गा बुद्धि चोखविषीं। जाण येथ राजसी। अक्षत टाकिली जैसी। मांदियेवरी ॥ ७२३॥

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता ।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥ ३२॥

आणि राजा जिया वाटा जाये। ते चोरांसि आडव होये। कां राक्षसां दिवो पाहे। राती होऊनि ॥ ७२४॥
नाना निधानचि निदैवा। होये कोळसयाचा उडवा। पैं असतें आपणपें जीवा। नाहीं जालें ॥ ७२५॥
तैसें धर्मजात तितुकें। जिये बुद्धीसी पातकें। साच तें लटिकें। ऐसेंचि बुझे ॥ ७२६॥

ते आघवेचि अर्थ। करूनि घाली अनर्थ। गुण ते ते व्यवस्थित। दोषचि मानी ॥ ७२७॥
किंबहुना श्रुतिजातें। अधिष्ठूनि केलें सरतें। तेतुलेंही उपरतें। जाणे जे बुद्धी ॥ ७२८॥
ते कोणातेंही न पुसतां। तामसी जाणावी पंडुसुता। रात्री काय धर्मार्थां। साच करावी ॥ ७२९॥
एवं बुद्धीचे भेद। तिन्ही तुज विशद। सांगितले स्वबोध-। कुमुदचंद्रा ॥ ७३०॥
आतां ययाचि बुद्धिवृत्ती। निष्टंकिला कर्मजातीं। खांदु मांडिजे धृती। त्रिविधा तया ॥ ७३१॥
तिये धृतीचेही विभाग। तिन्ही यथालिंग। सांगिजती चांग। अवधान देई ॥ ७३२॥

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः ।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥ ३३॥

तरी उदेलिया दिनकरु। चोरीसिं थोके अंधारु। कां राजाज्ञा अव्यवहारु। कुंठवी जेवीं ॥ ७३३॥
नाना पवनाचा साटु। वाजीनलिया नीटु। आंगेंसीं बोभाटु। सांडिती मेघ ॥ ७३४॥
कां अगस्तीचेनि दर्शनें। सिंधु घेऊनि ठाती मौनें। चंद्रोदयीं कमळवनें। मिठी देती ॥ ७३५॥
हें असो पावो उचलिला। मदमुख न ठेविती खालां। गर्जोनि पुढां जाला। सिंहु जरी ॥ ७३६॥
तैसा जो धीरु। उठलिया अंतरु। मनादिकें व्यापारु। सांडिती उभीं ॥ ७३७॥
इंद्रियां विषयांचिया गांठी। अपैसया सुटती किरीटी। मन मायेच्या पोटीं। रिगती दाही ॥ ७३८॥
अधोर्ध्व गूढें काढी। प्राण नवांची पेंडी। बांधोनि घाली उडी। मध्यमेमाजीं ॥ ७३९॥
संकल्पविकल्पांचें लुगडे। सांडूनि मन उघडें। बुद्धि मागिलेकडे। उगीचि बैसे ॥ ७४०॥
ऐसी धैर्यराजें जेणें। मन प्राण करणें। स्वचेष्टांचीं संभाषणें। सांडविजती ॥ ७४१॥
मग आघवींचि सडीं। ध्यानाच्या आंतुल्या मढीं । कोंडिजती निरवडी। योगाचिये ॥ ७४२॥
परी परमात्मया चक्रवर्ती। उगाणिती जंव हातीं। तंव लांचु न घेतां धृती। धरिजती जिया ॥ ७४३॥
ते गा धृती येथें। सात्विक हें निरुतें। आईक अर्जुनातें। श्रीकांतु म्हणे ॥ ७४४॥

यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन ।
प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ॥ ३४॥

आणि होऊनियां शरीरी। स्वर्गसंसाराच्या दोहीं घरीं। नांदे जो पोटभरी। त्रिवर्गोपायें ॥ ७४५॥
तो मनोरथांच्या सागरीं। धर्मार्थकामांच्या तारुवावरी। जेणें धैर्यबळें करी। क्रिया-वणिज ॥ ७४६॥
जें कर्म भांडवला सूये। तयाची चौगुणी येती पाहे। येवढें सायास साहे। जया धृती ॥ ७४७॥
ते गा धृती राजस। पार्था येथ परीयेस। आतां आइक तामस। तिसरी जे कां ॥ ७४८॥

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च ।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी ॥ ३५॥

तरी सर्वाधमें गुणें। जयाचें कां रूपा येणें। कोळसा काळेपणें। घडला जैसा ॥ ७४९॥
अहो प्राकृत आणि हीनु। तयाही कीं गुणत्वाचा मानु। तरी न म्हणिजे पुण्यजनु। राक्षसु काई ?॥ ७५०॥

पैं ग्रहांमाजीं इंगळु। तयातें म्हणिजे मंगळु। तैसा तमीं धसाळु। गुणशब्दु हा ॥ ७५१॥
जे सर्वदोषांचा वसौटा। तमचि कामऊनि सुभटा। उभारिला आंगवठा। जया नराचा ॥ ७५२॥
तो आळसु सूनि असे कांखे। म्हणौनि निद्रे कहीं न मुके। पापें पोषितां दुःखें। न सांडिजे जेवीं ॥ ७५३॥
आणि देहधनाचिया आवडी। सदा भय तयातें न सांडी। विसंबूं न सके धोंडीं। काठिण्य जैसें ॥ ७५४॥
आणि पदार्थजातीं स्नेहो। बांधे म्हणौनि तो शोकें ठावो। केला न शके पाप जावों। कृतघ्नौनि जैसें ॥ ७५५॥
आणि असंतोष जीवेंसीं। धरूनि ठेला अहर्निशीं। म्हणौनि मैत्री तेणेंसीं। विषादें केली ॥ ७५६॥
लसणातें न सांडी गंधी। कां अपथ्यशीळातें व्याधी। तैसी केली मरणावधी। विषादें तया ॥ ७५७॥
आणि वयसा वित्तकामु। ययांचा वाढवी संभ्रमु। म्हणौनि मदें आश्रमु। तोचि केला ॥ ७५८॥
आगीतें न सांडी तापु। सळातें जातीचा सापु। कां जगाचा वैरी वासिपु। अखंडु जैसा ॥ ७५९॥
नातरी शरीरातें काळु। न विसंबे कवणे वेळु। तैसा आथी अढळु। तामसीं मदु ॥ ७६०॥
एवं पांचही हे निद्रादिक। तामसाच्या ठाईं दोख। जिया धृती देख। धरिलें आहाती ॥ ७६१॥
तिये गा धृती नांवें। तामसी येथ हें जाणावें। म्हणितलें तेणें देवें। जगाचेनी ॥ ७६२॥
एवं त्रिविध जे बुद्धि। कीजे कर्मनिश्चयो आधि। तो धृती या सिद्धि। नेइजो येथ ॥ ७६३॥
सूर्यें मार्गु गोचरु होये। आणि तो चालती कीर पाये। परी चालणें तें आहे। धैर्यें जेवीं ॥ ७६४॥
तैसी बुद्धि कर्मातें दावी। ते करणसामग्री निफजवी। परी निफजावया होआवी। धीरता जे ॥ ७६५॥
ते हे गा तुजप्रती। सांगीतली त्रिविध धृती। यया कर्मत्रया निष्पत्ती। जालिया मग ॥ ७६६॥
येथ फळ जें एक निफजे। सुख जयातें म्हणिजे। तेंही त्रिविध जाणिजे। कर्मवशें ॥ ७६७॥
तरी फळरूप तें सुख । त्रिगुणीं भेदलें देख। विवंचूं आतां चोख। चोखीं बोलीं ॥ ७६८॥
परी चोखी ते कैसी सांगे। पैं घेवों जातां बोलबगें। कानींचियेही लागे। हातींचा मळु ॥ ७६९॥
म्हणौनि जयाचेनि अव्हेरें। अवधानही होय बाहिरें। तेणें आइक हो आंतरें। जीवाचेनि जीवें ॥ ७७०॥
ऐसें म्हणौनि देवो। त्रिविधा सुखाचा प्रस्तावो। मांडला तो निर्वाहो। निरूपित असें ॥ ७७१॥

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति ॥ ३६॥

म्हणे सुखत्रयसंज्ञा। सांगों म्हणौनि प्रतिज्ञा। बोलिलों तें प्राज्ञा। ऐक आतां ॥ ७७२॥
तरी सुख तें गा किरीटी। दाविजेल तुज दिठी। जें आत्मयाचिये भेटी। जीवासि होय ॥ ७७३॥
परी मात्रेचेनि मापें। दिव्यौषध जैसें घेपें। कां कथिलाचें कीजे रुपें। रसभावनीं ॥ ७७४॥
नाना लवणाचें जळु। होआवया दोनि चार वेळु। देऊनि सांडिजती ढाळु। तोयाचें जेवीं ॥ ७७५॥
तेवीं जालेनि सुखलेशें। जीवु भाविलिया अभ्यासें। जीवपणाचें नासे। दुःख जेथें ॥ ७७६॥
तें येथ आत्मसुख । जालें असे त्रिगुणात्मक। तेंही सांगों एकैक। रूप आतां ॥ ७७७॥

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥ ३७॥

आतां चंदनाचें बूड। सर्पीं जैसें दुवाड। कां निधानाचें तोंड। विवसिया जेवीं ॥ ७७८॥

अगा स्वर्गींचें गोमटें। आडव यागसंकटें। कां बाळपण दासटें। त्रासकाळें ॥ ७७९ ॥
हें असो दीपाचिये सिद्धी। अवघड धू आधीं। नातरी तो औषधीं। जिभेचा ठावो ॥ ७८० ॥
तयापरी पांडवा। जया सुखाचा रिगावा। विषम तेथ मेळावा। यमदमांचा ॥ ७८१ ॥
देत सर्वस्नेहा मिठी। आगीं ऐसें वैराग्य उठी। स्वर्ग संसारा कांटी। काढितचि ॥ ७८२ ॥
विवेकश्रवणें खरपुसें। जेथ व्रताचरणें कर्कशें। करितां जाती भोकसे। बुद्ध्यादिकांचे ॥ ७८३ ॥
सुषुम्नेचेनि तोंडें। गिळिजे प्राणापानाचे लोंढे। बोहणियेसीचि येवढें। भारी जेथ ॥ ७८४ ॥
जें सारसांही विघडतां। होय वोहाहूनि वस्त काढितां। ना भणंगु दवडितां। भाणयावरुनी ॥ ७८५ ॥
पैं मायेपुढौनि बाळक। काळें नेतां एकुलतें एक। होय कां उदक। तुटतां मीना ॥ ७८६ ॥
तैसें विषयांचें घर। इंद्रियां सांडितां थोर। युगांतु होय तें वीर। विराग साहाती ॥ ७८७ ॥
ऐसा जया सुखाचा आरंभु। दावी काठिण्याचा क्षोभु। मग क्षीराब्धी लाभु। अमृताचा जैसा ॥ ७८८ ॥
पहिलया वैराग्यगरळा। धैर्यशंभु वोडवी गळा। तरी ज्ञानामृतें सोहळा। पाहे जेथें ॥ ७८९ ॥
पैं कोलिताही कोपे ऐसें। द्राक्षांचें हिरवेपण असे । तें परीपाकीं कां जैसें। माधुर्य आते ॥ ७९० ॥
तें वैराग्यादिक तैसें। पिकलिया आत्मप्रकाशें। मग वैराग्येंसींही नाशे। अविद्याजात ॥ ७९१ ॥
तेव्हां सागरीं गंगा जैसी । आत्मीं मीनल्या बुद्धि तैसी। अद्वयानंदाची आपैसी। खाणी उघडे ॥ ७९२ ॥
ऐसें स्वानुभवविश्रामें। वैराग्यमूळ जें परिणमे। तें सात्विक येणें नामें। बोलिजे सुख ॥ ७९३ ॥

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥ ३८ ॥

आणि विषयेंद्रियां। मेळु होतां धनंजया। जें सुख जाय थडिया। सांडूनि दोन्ही ॥ ७९४ ॥
अधिकारिया रिगतां गांवो। होय जैसा उत्साहो। कां रिणावरी विवाहो। विस्तारिला ॥ ७९५ ॥
नाना रोगिया जिभेपासीं। केळें गोड साखरेसीं। कां बचनागाची जैसी। मधुरता पहिली ॥ ७९६ ॥
पहिलें संवचोराचें मैत्र। हाटभेटीचें कलत्र। कां लाघवियाचे विचित्र। विनोद ते ॥ ७९७ ॥
तैसें विषयेंद्रियदोखीं। जें सुख जीवातें पोखी। मग उपडिला खडकीं। हंसु जैसा ॥ ७९८ ॥
तैसी जोडी आघवी आटे। जीविताचा ठाय फिटे। सुकृताचियाही सुटे। धनाची गांठी ॥ ७९९ ॥
आणिक भोगिलें जें कांहीं। तें स्वप्न तैसें होय नाहीं। मग हानीच्याचि घाई। लोळावें उरे ॥ ८०० ॥
ऐसें आपत्ती जें सुख। ऐहिकीं परिणमे देख। परत्रीं कीर विख। होऊनि परते ॥ ८०१ ॥
जे इंद्रियजाता लळा। दिधलिया धर्माचा मळा। जाळूनि भोगिजे सोहळा। विषयांचा जेथ ॥ ८०२ ॥
तेथ पातकें बांधिती थावो। तियें नरकीं देती ठावो। जेणें सुखें हा अपावो। परत्रीं ऐसा ॥ ८०३ ॥
पैं नामें विष महुरें। परी मारूनि अंतीं खरें। तैसें आदि जें गोडिरें। अंतीं कडू ॥ ८०४ ॥
पार्था तें सुख साचें। वळिलें आहे रजाचें। म्हणौनि न शिवें तयाचें। आंग कहीं ॥ ८०५ ॥

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः ।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ ३९ ॥

आणि अपेयाचेनि पानें। अखाद्याचेनि भोजनें। स्वैरस्त्रीसंनिधानें। होय जें सुख ॥ ८०६ ॥

का पुढिलांचेनि मारें। नातरी परस्वापहारें। जें सुख अवतरे। भाटाच्या बोलीं ॥ ८०७॥
जें आलस्यावरी पोखिजे। निद्रेमाजीं जें देखिजे। जयाच्या आद्यंतीं भुलिजे। आपुली वाट ॥ ८०८॥
तें गा सुख पार्था। तामस जाण सर्वथा। हें बहु न सांगोंचि जें कथा। असंभाव्य हे ॥ ८०९॥
ऐसें कर्मभेदें मुदलें। फळसुखही त्रिधा जालें। तें हें यथागमें केलें। गोचर तुज ॥ ८१०॥
ते कर्ता कर्म कर्मफळ। ये त्रिपुटी येकी केवळ। वांचूनि कांहींचि नसे स्थूल। सूक्ष्मीं इये ॥ ८११॥
आणि हे तंव त्रिपुटी। तिहीं गुणीं इहीं किरीटी। गुंफिली असे पटीं। तांतुवीं जैसी ॥ ८१२॥

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥ ४०॥

म्हणौनि प्रकृतीच्या आवलोकीं। न बंधिजे इहीं सत्वादिकीं। तैसी स्वर्गीं ना मृत्युलोकीं। आथी वस्तु ॥ ८१३॥
कैंचा लोंवेवीण कांबळा। मातियेवीण मोदळा। का जळेंवीण कल्लोळा। होणें आहे ? ॥ ८१४॥
तैसें न होनि गुणाचें। सृष्टीची रचना रचे। ऐसें नाहींचि गा साचें। प्राणिजात ॥ ८१५॥
यालागीं हें सकळ। तिहीं गुणांचेंचि केवळ। घडलें आहे निखिळ। ऐसें जाण ॥ ८१६॥
गुणीं देवां त्रयी लाविली। गुणीं लोकीं त्रिपुटी पाडिली। चतुर्वर्णा घातली। सिनानीं उळिगें ॥ ८१७॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप ।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥ ४१॥

तेचि चारी वर्ण। पुससी जरी कोण कोण। तरी जयां मुख्य ब्राह्मण। धुरेचे कां ॥ ८१८॥
येर क्षत्रिय वैश्य दोन्ही। तेही ब्राह्मणाच्याचि मानिजे मानी। जे ते वैदिकविधानीं। योग्य म्हणौनि ॥ ८१९॥
चौथा शूद्रु जो धनंजया। वेदीं लागु नाहीं तया। तऱ्हीं वृत्ति वर्णत्रया। आधीन तयाची ॥ ८२०॥
तिये वृत्तिचिया जवळिका। वर्णा ब्राह्मणादिकां। शूद्रही कीं देखा। चौथा जाला ॥ ८२१॥
जैसा फुलाचेनि सांगातें। तांतु तुरंबिजे श्रीमंतें। तैसें द्विजसंगें शूद्रातें। स्वीकारी श्रुती ॥ ८२२॥
ऐसैसी गा पार्था। हे चतुर्वर्णव्यवस्था। करूं आतां कर्मपथा। यांचिया रूपा ॥ ८२३॥
जिहीं गुणीं ते वर्ण चारी। जन्ममृत्यूंचिये कातरी। चुकोनियां ईश्वरीं। पैठे होती ॥ ८२४॥
जिये आत्मप्रकृतीचे इहीं। गुणीं सत्त्वादिकीं तिहीं। कर्में चौघां चहूं ठाईं। वांटिलीं वर्णा ॥ ८२५॥
जैसें बापें जोडिलें लेंका। वांटिलें सूर्यें मार्ग पांथिका। नाना व्यापार सेवकां। स्वामी जैसें ॥ ८२६॥
तैसी प्रकृतीच्या गुणीं। जया कर्माची वेल्हावणी। केली आहे वर्णीं। चहूं इहीं ॥ ८२७॥
तेथ सत्त्वें आपल्या आंगीं। समीन-निमीन भागीं। दोघे केले नियोगी। ब्राह्मण क्षत्रिय ॥ ८२८॥
आणि रज परी सात्त्विक। तेथ ठेविलें वैश्य लोक। रजचि तमभेसक। तेथ शूद्र ते गा ॥ ८२९॥
ऐसा येकाचि प्राणिवृंदा। भेदु चतुर्वर्णधा। गुणींचि प्रबुद्धा। केला जाण ॥ ८३०॥
मग आपुलें ठेविलें जैसें। आइतेंचि दीपें दिसे। गुणभिन्न कर्म तैसें। शास्त्र दावी ॥ ८३१॥
तेंचि आतां कोण कोण। वर्णविहिताचें लक्षण। हें सांगों ऐक श्रवण-। सौभाग्यनिधी ॥ ८३२॥

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।

ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥ ४२॥

तरी सर्वेंद्रियांचिया वृत्ती। घेऊनि आपुल्या हातीं। बुद्धि आत्मया मिळे येकांतीं। प्रिया जैसी ॥ ८३३॥
ऐसा बुद्धीचा उपरमु। तया नाम म्हणिपे शमु। तो गुण गा उपक्रमु। जया कर्माचा ॥ ८३४॥
आणि बाह्येंद्रियांचें धेंडें। पिटूनि विधीचेनि दंडें। नेदिजे अधर्माकडे। कहींचि जावों ॥ ८३५॥
तो पैं गा शमा विरजा। दमु गुण जेथ दुजा। आणि स्वधर्माचिया वोजा। जिणें जें कां ॥ ८३६॥
सटवीचिये रातीं। न विसंबिजे जेवीं वाती। तैसा ईश्वरनिर्णयो चित्तीं। वाहणें सदा ॥ ८३७॥
तया नाम तप। ते तिजया गुणाचें रूप। आणि शौचही निष्पाप। द्विविध जेथ ॥ ८३८॥
मन भावशुद्धी भरलें। आंग क्रिया अळंकारिलें। ऐसें सबाह्य जियालें। साजिरें जें कां ॥ ८३९॥
तया नाम शौच पार्था। तो कर्मीं गुण जये चौथा। आणि पृथ्वीचिया परी सर्वथा। सर्व जें साहाणें ॥ ८४०॥
ते गा क्षमा पांडवा। गुण जेथ पांचवा। स्वरांमाजीं सुहावा। पंचमु जैसा ॥ ८४१॥
आणि वांकडेनी वोघेंसीं। गंगा वाहे उजूचि जैसी। कां पुटीं वळला ऊसीं। गोडी जैसी ॥ ८४२॥
तैसा विषमांही जीवां-। लागीं उजुकारु बरवा। तें आर्जव गा साहावा। जेथींचा गुण ॥ ८४३॥
आणि पाणियें प्रयत्नें माळी। अखंड जचे झाडामुळीं। परी तें आघवेंचि फळीं। जाणे जेवीं ॥ ८४४॥
तैसें शास्त्राचारें तेणें। ईश्वरुचि येकु पावणें। हें फुडें जें कां जाणणें। तें येथ ज्ञान ॥ ८४५॥
तें गा कर्मीं जिये। सातवा गुण होये। आणि विज्ञान हें पाहें। एवंरूप ॥ ८४६॥
तरी सत्वशुद्धीचिये वेळे। शास्त्रें कां ध्यानबळें। ईश्वरतत्त्वींचि मिळे। निष्टंकबुद्धी ॥ ८४७॥
हें विज्ञान बरवें। गुणरत्न जेथ आठवें। आणि आस्तिक्य जाणावें। नववा गुण ॥ ८४८॥
पैं राजमुद्रा आथिलिया। प्रजा भजे भलतया। तेवीं शास्त्रें स्वीकारिलिया। मार्गमात्रातें ॥ ८४९॥
आदरें जें कां मानणें। तें आस्तिक्य मी म्हणें। तो नववा गुण जेणें। कर्म तें साच ॥ ८५०॥
एवं नवही शमादिक। गुण जेथ निर्दोख। तें कर्म जाण स्वाभाविक। ब्राह्मणाचें ॥ ८५१॥
तो नवगुणरत्नाकरु। यया नवरत्नांचा हारु। न फेडीत ले दिनकरु। प्रकाशु जैसा ॥ ८५२॥
नाना चांपा चांपौळीं पूजिला। चंद्रु चंद्रिका धवळला। कां चंदनु निजें चर्चिला। सौरभ्यें जेवीं ॥ ८५३॥
तेवीं नवगुणटिकलग। लेणें ब्राह्मणाचें अव्यंग। कहींचि न संडी आंग। ब्राह्मणाचें ॥ ८५४॥
आतां उचित जें क्षत्रिया। तेंहीं कर्म धनंजया। सांगों ऐक प्रज्ञेचिया। भरोवरी ॥ ८५५॥

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥ ४३॥

तरी भानु हा तेजें। नापेक्षी जेवीं विरजे। कां सिंहें न पाहिजे। जावळिया ॥ ८५६॥
ऐसा स्वयंभ जो जीवें लाठु। सावायेंवीण उद्भटु। ते शौर्य गा जेथ श्रेष्ठु। पहिला गुण ॥ ८५७॥
आणि सूर्याचेनि प्रतापें। कोडिही नक्षत्र हारपे। ना तो तरी न लोपे। सचंद्रीं तिहीं ॥ ८५८॥
तैसेनि आपुले प्रौढीगुणें। जगा या विस्मयो देणें। आपण तरी न क्षोभणें। कायसेनही ॥ ८५९॥
तें प्रागल्भ्यरूप तेजा। जिये कर्मीं गुण दुजा। आणि धीरु तो तिजा। जेथींचा गुण ॥ ८६०॥
वरिपडलिया आकाश। बुद्धीचे डोळे मानस। झांकी ना ते परीयेस। धैर्य जेथें ॥ ८६१॥
आणि पाणी हो कां भलतेतुकें। परी तें जिणौनि पद्म फांके। कां आकाश उंचिया जिंके। आवडे तयातें ॥ ८६२॥

तेवीं विविध अवस्था। पातलिया जिणौनि पार्था। प्रज्ञाफळ तया अर्था। वेझ देणें जें ॥ ८६३॥
तें दक्षत्व गा चोख। जेथ चौथा गुण देख। आणि झुंज अलौकिक। तो पांचवा गुण ॥ ८६४॥
आदित्याचीं झाडें। सदा सन्मुख सूर्याकडे। तेवीं समोर शत्रूपुढें। होणें जें कां ॥ ८६५॥
माहेवणी प्रयत्नेंसी। चुकविजे सेजे जैसी। रिपू पाठी नेदिजे तैसी। समरांगणीं ॥ ८६६॥
हा क्षत्रियाचेया आचारीं। पांचवा गुणेंद्रु अवधारीं। चहूं पुरुषार्थां शिरीं। भक्ति जैसी ॥ ८६७॥
आणि जालेनि फुलें फळें। शाखिया जैसीं मोकळे। कां उदार परीमळें। पद्माकरु ॥ ८६८॥
नाना आवडीचेनि मापें। चांदिणें भलतेणें घेपे। पुढिलांचेनि संकल्पें । तैसें जें देणें ॥ ८६९॥
तें उमप गा दान। जेथ सहावें गुणरत्न। आणि आज्ञे एकायतन। होणें जें कां ॥ ८७०॥
पोषूनि अवयव आपुले। करविजतीं मानविले। तेवीं पालणें लोभविलें। जग जें भोगणें ॥ ८७१॥
तया नाम ईश्वरभावो। जो सर्वसामर्थ्याचा ठावो। तो गुणांमाजीं रावो। सातवा जेथ ॥ ८७२॥
ऐसें जें शौर्यादिकीं। इहीं सात गुणविशेखीं। अळंकृत सप्तऋखीं। आकाश जैसें ॥ ८७३॥
तैसें सप्तगुणीं विचित्र। कर्म जें जगीं पवित्र। तें सहज जाण क्षात्र। क्षत्रियाचें ॥ ८७४॥
नाना क्षत्रिय नव्हे नरु। तो सत्त्वसोनयाचा मेरु। म्हणौनि गुणस्वर्गां आधारु। सातां इयां ॥ ८७५॥
नातरी सप्तगुणार्णवीं। परीवारली बरवी। हे क्रिया नव्हे पृथ्वी। भोगीतसे तो ॥ ८७६॥
कां गुणांचे सातांही ओघीं। हे क्रिया ते गंगा जगीं। तया महोदधीचिया आंगीं। विलसे जैसी ॥ ८७७॥
परी हें बहु असो देख। शौर्यादि गुणात्मक। कर्म गा नैसर्गिक। क्षात्रजातीसी ॥ ८७८॥
आतां वैश्याचिये जाती। उचित जे महामती। ते ऐकें गा निरुती। क्रिया सांगों ॥ ८७९॥

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥ ४४॥

तरी भूमि बीज नांगरु। यया भांडवलाचा आधारु। घेऊनि लाभु अपारु। मेळवणें जें ॥ ८८०॥
किंबहुना कृषी जिणें। गोधनें राखोनि वर्तणें। कां समर्घीची विकणें। महर्घीवस्तु ॥ ८८१॥
येतुलाचि पांडवा। वैश्यातें कर्माचा मेळावा। हा वैश्यजातीस्वभावा। आंतुला जाण ॥ ८८२॥
आणि वैश्य क्षत्रिय ब्राह्मण। हे द्विजन्में तिन्ही वर्ण। ययांचें जें शुश्रूषण। तें शूद्रकर्म ॥ ८८३॥
पैं द्विजसेवेपरौतें। धांवणें नाहीं शूद्रातें। एवं चतुर्वर्णोचितें। दाविलीं कर्में ॥ ८८४॥

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ॥ ४५॥

आतां इयेचि विचक्षणा। वेगळालिया वर्णा। उचित जैसें करणां। शब्दादिक ॥ ८८५॥
नातरी जळदच्युता। पाणिया उचित सरिता। सरितेसी पंडुसुता। सिंधु उचितु ॥ ८८६॥
तैसें वर्णाश्रमवशें। जें करणीय आलें असे । गोरेया आंगा जैसें। गोरेपण ॥ ८८७॥
तया स्वभावविहिता कर्मा। शास्त्राचेनि मुखें वीरोत्तमा। प्रवर्तावयालागीं प्रमा। अढळ कीजे ॥ ८८८॥
पैं आपुलेंचि रत्न थितें। घेपे पारखियाचेनि हातें। तैसें स्वकर्म आपैतें। शास्त्रें करावीं ॥ ८८९॥
जैसी दिठी असे आपुलिया ठायीं। परी दीपेंवीण भोग नाहीं। मार्गु न लाहतां काई। पाय असतां होय ? ॥ ८९०॥

म्हणौनि ज्ञातिवशें साचारु। सहज असे जो अधिकारु। तो आपुलिया शास्त्रें गोचरु। आपण कीजे ॥ ८९१॥
मग घरींचाचि ठेवा। जेवीं डोळ्यां दावी दिवा। तरी घेतां काय पांडवा। आडळु असे ? ॥ ८९२॥
तैसें स्वभावें भागा आलें। वरी शास्त्रें खरें केलें। तें विहित जो आपुलें। आचरे गा ॥ ८९३॥
परी आळसु सांडुनी। फळकाम दवडुनी। आंगें जीवें मांडुनी। तेथेंचि भरु ॥ ८९४॥
वोघीं पडिलें पाणी। नेणें आनानी वाहणी। तैसा जाय आचरणीं। व्यवस्थौनी ॥ ८९५॥
अर्जुना जो यापरी। तें विहित कर्म स्वयें करी। तो मोक्षाच्या ऐलद्वारीं। पैठा होय ॥ ८९६॥
जे अकरणा आणि निषिद्धा। न वचेचि कांहीं संबंधा। म्हणौनि भवा विरुद्धा। मुकला तो ॥ ८९७॥
आणि काम्यकर्मांकडे। न परतेचि जेथ कोडें। तेथ चंदनाचेही खोडे। न लेचि तो ॥ ८९८॥
येर नित्य कर्म तंव। फळत्यागें वेंचिलें सर्व। म्हणौनि मोक्षाची शींव। ठाकूं लाहे ॥ ८९९॥
ऐसेनि शुभाशुभीं संसारीं। सांडिला तो अवधारीं। वैराग्यमोक्षद्वारीं। उभा ठाके ॥ ९००॥
जें सकळ भाग्याची सीमा। मोक्षलाभाची जें प्रमा। नाना कर्ममार्गश्रमा। शेवटु जेथ ॥ ९०१॥
मोक्षफळें दिधली वोल। जें सुकृततरूचें फूल। तयें वैराग्यीं ठेवी पाऊल। भंवरु जैसा ॥ ९०२॥
पाहीं आत्मज्ञानसुदिनाचा। वाधावा सांगतया अरुणाचा। उदयो त्या वैराग्याचा। ठावो पावे ॥ ९०३॥
किंबहुना आत्मज्ञान। जेणें हाता ये निधान। तें वैराग्य दिव्यांजन। जीवें ले तो ॥ ९०४॥
ऐसी मोक्षाची योग्यता। सिद्धी जाय तया पंडुसुता। अनुसरोनि विहिता। कर्मा यया ॥ ९०५॥
हें विहित कर्म पांडवा। आपुला अनन्य वोलावा। आणि हेचि परम सेवा। मज सर्वात्मकाची ॥ ९०६॥
पैं आघवाचि भोगेंसीं। पतिव्रता क्रीडे प्रियेंसीं। कीं तयाचीं नामें जैसीं। तपें तियां केलीं ॥ ९०७॥
कां बाळका एकी माये। वांचोनि जिणें काय आहे। म्हणौनि सेविजे कीं तो होये। पाटाचा धर्मु ॥ ९०८॥
नाना पाणी म्हणौनि मासा। गंगा न सांडितां जैसा। सर्व तीर्थ सहवासा। वरपडा जाला ॥ ९०९॥
तैसें आपुलिया विहिता। उपावो असे न विसंबितां। ऐसा कीजे कीं जगन्नाथा। आभारु पडे ॥ ९१०॥
अगा जया जें विहित। तें ईश्वराचें मनोगत। म्हणौनि केलिया निभ्रांत। सांपडेचि तो ॥ ९११॥
पैं जीवाचे कसीं उतरली। ते दासी कीं गोसावीण जाली। सिसे वेंचि तया मविली। वही जेवीं ॥ ९१२॥
तैसें स्वामीचिया मनोभावा। न चुकिजे हेचि परमसेवा। येर तें गा पांडवा। वाणिज्य करणें ॥ ९१३॥

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥ ४६॥

म्हणौनि विहित क्रिया केली। नव्हे तयाची खूण पाळिली। जयापसूनि कां आलीं। आकारा भूतें ॥ ९१४॥
जो अविद्येचिया चिंधिया। गुंडूनि जीव बाहुलिया। खेळवीतसे तिगुणिया। अहंकाररज्जू ॥ ९१५॥
जेणें जग हें समस्त। आंत बाहेरी पूर्ण भरित। जालें आहे दीपजात। तेजें जैसें ॥ ९१६॥
तया सर्वात्मका ईश्वरा। स्वकर्मकुसुमांची वीरा। पूजा केली होय अपारा। तोषालागीं ॥ ९१७॥
म्हणौनि तिये पूजे। रिझलेनि आत्मराजें। वैराग्यसिद्धि देईजे। पसाय तया ॥ ९१८॥
जिये वैराग्यदशें। ईश्वराचेनि वेधवशें। हें सर्वही नावडे जैसें। वांत होय ॥ ९१९॥
प्राणनाथाचिया आधी। विरहिणीतें जिणेंही बाधी। तैसें सुखजात त्रिशुद्धी। दुःखचि लागे ॥ ९२०॥
सम्यक्ज्ञान नुदैजतां। वेधेंचि तन्मयता। उपजे ऐसी योग्यता। बोधाची लाहे ॥ ९२१॥
म्हणौनि मोक्षलाभालागीं। जो व्रतें वाहातसें आंगीं। तेणें स्वधर्मु आस्था चांगी। अनुष्ठावा ॥ ९२२॥

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥ ४७॥

अगा आपुला हा स्वधर्मु। आचरणीं जरी विषमु। तरी पाहावा तो परिणामु। फळेल जेणें ॥ ९२३॥
जैं सुखालागीं आपणपयां। निंबचि आथी धनंजया। तैं कडुवटपणा तयाचिया। उबगिजेना ॥ ९२४॥
फळणया ऐलीकडे। केळीतें पाहातां आस मोडे। ऐसी त्यजिली तरी जोडे। तैसें कें गोमटें ॥ ९२५॥
तेवीं स्वधर्मु सांकडु। देखोनि केला जरी कडु। तरी मोक्षसुरवाडु। अंतरला कीं ॥ ९२६॥
आणि आपुली माये। कुब्ज जरी आहे। तरी जीये तें नोहे। स्नेह कुन्हें कीं ॥ ९२७॥
येरी जिया पराविया। रंभेहुनि बरविया। तिया काय कराविया। बाळकें तेणें ? ॥ ९२८॥
अगा पाणियाहूनि बहुवें। तुपीं गुण कीर आहे। परी मीना काय होये। असणें तेथ ॥ ९२९॥
पैं आघविया जगा जें विख। तें विख किडियाचें पीयूख। आणि जगा गूळ तें देख। मरण तया ॥ ९३०॥
म्हणौनि जे विहित जया जेणें। फिटे संसाराचें धरणें। क्रिया कठोर तन्ही तेणें। तेचि करावी ॥ ९३१॥
येरा पराचारा बरविया। ऐसें होईल टेंकलया। पायांचें चालणें डोइया। केलें जैसें ॥ ९३२॥
यालागीं कर्म आपुले। जें जातिस्वभावें असे आलें। तें करी तेणें जिंतिलें। कर्मबंधातें ॥ ९३३॥
आणि स्वधर्मुचि पाळावा। परधर्मु तो गाळावा। हा नेमुही पांडवा। न कीजेचि पै गा ? ॥ ९३४॥
तरी आत्मा दृष्ट नोहे। तंव कर्म करणें कां ठाये ?। आणि करणें तेथ आहे। आयासु आधीं ॥ ९३५॥

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् ।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ॥ ४८॥

म्हणौनि भलतिये कर्मीं। आयासु जन्ही उपक्रमीं। तरी काय स्वधर्मीं। दोषु। सांगें ? ॥ ९३६॥
आगा उजू वाटा चालावें। तन्ही पायचि शिणवावे। ना आडरानें धांवावें। तन्ही तेंचि ॥ ९३७॥
पैं शिळा कां सिदोरिया। दाटणें एक धनंजया। परी जें वाहतां विसांवया। मिळिजे तें घेपे ॥ ९३८॥
येन्हवीं कणा आणि भूसा। कांडितांही सोसु सरिसा। जेंचि रंधन श्वान मांसा। तेंचि हवी ॥ ९३९॥
दधी जळाचिया घुसळणा। व्यापार सारिखेचि विचक्षणा। वाळुवे तिळा घाणा। गाळणें एक ॥ ९४०॥
पैं नित्य होम देयावया। कां सैरा आगी सुवावया। फुंकितां धू धनंजया। साहणें तेंचि ॥ ९४१॥
परी धर्मपत्नी धांगडी। पोसितां जरी एकी वोढी। तरी कां अपरवडी। आणावी आंगा ? ॥ ९४२॥
हां गा पाठीं लागला घाई। मरण न चुकेचि पाहीं। तरी समोरला काई। आगळें न कीजे ? ॥ ९४३॥
कुलस्त्री दांड्याचे घाये। परघर रिगालीहि जरी साहे। तरी स्वपतीतें वायें। सांडिलें कीं ॥ ९४४॥
तैसें आवडतेंही करणें। न निपजे शिणल्याविणें। तरी विहित बा रे कोणें। बोलें भारी ? ॥ ९४५॥
वरी थोडेंचि अमृत घेतां। सर्वस्व वेंचो कां पंडुसुता। जेणें जोडे जीविता। अक्षयत्व ॥ ९४६॥
येर काह्यां मोलें वेंचूनि। विष पियावे घेऊनि। आत्महत्येसि निमोनि। जाइजे जेणें ॥ ९४७॥
तैसें जाचूनियां इंद्रियें। वेंचूनि आयुष्याचेनि दिये। सांचलें पापीं आन आहे। दुःखावाचूनि ? ॥ ९४८॥
म्हणौनि करावा स्वधर्मु। जो करितां हिरोनि घे श्रमु। उचित देईल परमु। पुरुषार्थराजु ॥ ९४९॥
याकारणें किरीटी। स्वधर्माचिये राहाटी। न विसंबिजे संकटीं। सिद्धमंत्र जैसा ॥ ९५०॥

कां नाव जैसी उदधीं। महारोगीं दिव्यौषधी। न विसंबिजे तया बुद्धी। स्वकर्म येथ ॥ ९५१॥
मग ययाचि गा कपिध्वजा। स्वकर्माचिया महापूजा। तोषला ईशु तमरजा। झाडा करुनी ॥ ९५२॥
शुद्धसत्त्वाचिया वाटा। आणी आपुली उत्कंठा। भवस्वर्ग काळकूटा। ऐसें दावी ॥ ९५३॥
जियें वैराग्य येणें बोलें। मागां संसिद्धी रूप केलें। किंबहुना तें आपुलें। मेळवी खागें ॥ ९५४॥
मग जिंतिलिया हे भोये। पुरुष सर्वत्र जैसा होये। कां जालाही जें लाहे। तें आतां सांगों ॥ ९५५॥

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ॥ ४९॥

तरी देहादिक हें संसारें। सर्वही मांडलेंसे जें गुंफिरें। तेथ नातुडे तो वागुरें। वारा जैसा ॥ ९५६॥
पैं परिपाकाचिये वेळे। फळ देठें ना देठु फळें। न धरे तैसें स्नेह खुळें। सर्वत्र होय ॥ ९५७॥
पुत्र वित्त कलत्र। हे जालियाही स्वतंत्र। माझें न म्हणे पात्र। विषाचें जैसें ॥ ९५८॥
हें असो विषयजाती। बुद्धि पोळली ऐसी माघौती। पाउलें घेऊनि एकांतीं। हृदयाच्या रिगे ॥ ९५९॥
ऐसया अंतःकरण। बाह्य येतां तयाची आण। न मोडी समर्था भेण। दासी जैसी ॥ ९६०॥
तैसें ऐक्याचिये मुठी। माजिवडें चित्त किरीटी। करूनि वेधी नेहटीं। आत्मयाच्या ॥ ९६१॥
तेव्हां दृष्टादृष्ट स्पृहे। निमणें जालेंचि आहे। आगीं दडपलिया धुयें। राहिजे जैसें ॥ ९६२॥
म्हणौनि नियमिलिया मानसीं। स्पृहा नासौनि जाय आपैसीं। किंबहुना तो ऐसी। भूमिका पावे ॥ ९६३॥
पैं अन्यथा बोधु आघवा। मावळोनि तया पांडवा। बोधमात्रींचि जीवा। ठावो होय ॥ ९६४॥
धरवणी वेंचें सरे। तैसें भोगें प्राचीन पुरे। नवें तंव नुपकरे। कांहीचि करूं ॥ ९६५॥
ऐसीं कर्में साम्यदशा। होय तेथ वीरेशा। मग श्रीगुरु आपैसा। भेटेचि गा ॥ ९६६॥
रात्रीची चौपाहरी। वेंचलिया अवधारीं। डोळ्यां तमारी। मिळे जैसा ॥ ९६७॥
का येऊनि फळाचा घडु। पारुषवी केळीची वाढु। श्रीगुरु भेटोनि करी पाडु। बुभुत्सु तैसा ॥ ९६८॥
मग आलिंगिला पूर्णिमा। जैसा उणीव सांडी चंद्रमा। तैसें होय वीरोत्तमा। गुरुकृपा तया ॥ ९६९॥
तेव्हां अबोधुमात्र असे। तो तंव तया कृपा नासे। तेथ निशीसवें जैसें। आंधारें जाय ॥ ९७०॥
तैसी अबोधाचिये कुशी। कर्म कर्ता कार्य ऐशी। त्रिपुटी असे ते जैसी। गाभिणी मारिली ॥ ९७१॥
तैसेंचि अबोधनाशासवें। नाशे क्रियाजात आघवें। ऐसा समूळ संभवे। संन्यासु हा ॥ ९७२॥
येणें मुळाज्ञानसंन्यासें। दृश्याचा जेथ ठावो पुसे। तेथ बुझावें तें आपैसें। तोचि आहे ॥ ९७३॥
चेइलियावरी पाहीं। स्वप्नींचिया तिये डोहीं। आपणयातें काई। काढूं जाइजे ? ॥ ९७४॥
तैं मी नेणें आतां जाणेन। हें सरलें तया दुःस्वप्न। जाला ज्ञातृज्ञेयाविहीन। चिदाकाश ॥ ९७५॥
मुखाभासेंसी आरिसा। परौता नेलिया वीरेशा। पाहातेपणेंवीण जैसा। पाहाता ठाके ॥ ९७६॥
तैसें नेणणें जें गेलें। तेणें जाणणेंही नेलें। मग निष्क्रिय उरलें। चिन्मात्रचि ॥ ९७७॥
तेथ स्वभावें धनंजया। नाहीं कोणीचि क्रिया। म्हणौनि प्रवादु तया। नैष्कर्म्यु ऐसा ॥ ९७८॥
तें आपुलें आपणपें। असे तेंचि होऊनि हारपे। तरंगु कां वायुलोपें। समुद्रु जैसा ॥ ९७९॥
तैसें न होणें निफजे। ते नैष्कर्म्यसिद्धि जाणिजे। सर्वसिद्धींत सहजें। परम हेचि ॥ ९८०॥
देउळाचिया कामा कळसु। उपरम गंगेसी सिंधु प्रवेशु। कां सुवर्णशुद्धी कसु। सोळावा जैसा ॥ ९८१॥
तैसें आपुलें नेणणें। फेडिजे का जाणणें। तेंहि गिळूनि असणें। ऐसी जे दशा ॥ ९८२॥

तियेपरतें कांहीं। निपजणें आन नाहीं। म्हणौनि म्हणिपे पाहीं। परमसिद्धि ते ॥ ९८३॥

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे ।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ॥ ५०॥

परी हेचि आत्मसिद्धि। जो कोणी भाग्यनिधि। श्रीगुरुकृपालब्धि-। काळीं पावे ॥ ९८४॥
उदयतांचि दिनकरु। प्रकाशुचि आते आंधारु। कां दीपसंगें कापुरु। दीपुचि होय ॥ ९८५॥
तया लवणाची कणिका। मिळतखेंवो उदका। उदकचि होऊनि देखा। ठाके जेवीं ॥ ९८६॥
कां निद्रितु चेवविलिया। स्वप्नेंसि नीद वायां। जाऊनि आपणपयां। मिळे जैसा ॥ ९८७॥
तैसें जया कोण्हासि दैवें। गुरुवाक्यश्रवणाचि सवें। द्वैत गिळोनि विसंवे। आपणया वृत्ती ॥ ९८८॥
तयासी मग कर्म करणें। हें बोलिजैलचि कवणें। । आकाशा येणें जाणें। आहे काई ? ॥ ९८९॥
म्हणौनि तयासि कांहीं। त्रिशुद्धि करणें नाहीं। परी ऐसें जरी हें कांहीं। नव्हे जया ॥ ९९०॥
कानावचनाचिये भेटी-। सरिसाचि पैं किरीटी। वस्तु होऊनि उठी। कवणि एकु जो ॥ ९९१॥
येऱ्हवीं स्वकर्माचेनि वन्ही। काम्यनिषिद्धाचिया इंधनीं। रजतमें कीर दोन्ही। जाळिलीं आधीं ॥ ९९२॥
पुत्र वित्त परलोकु। यया तिहींचा अभिलाखु। घरीं होय पाइकु। हेंही जालें ॥ ९९३॥
इंद्रियें सैरा पदार्थीं। रिगतां विटाळलीं होतीं। तिये प्रत्याहार तीर्थीं। न्हाणिलीं कीर ॥ ९९४॥
आणि स्वधर्माचें फळ। ईश्वरीं अर्पूनि सकळ। घेऊनि केलें अढळ। वैराग्यपद ॥ ९९५॥
ऐसी आत्मसाक्षात्कारीं। लाभे ज्ञानाची उजरी। ते सामुग्री कीर पुरी। मेळविली ॥ ९९६॥
आणि तेचि समयीं। सद्‌गुरु भेटले पाहीं। तेवींचि तिहीं कांहीं। वंचिजेना ॥ ९९७॥
परी वोखद घेतखेंवो। काय लाभे आपला ठावो ? । कां उदयजतांचि दिवो। मध्यान्ह होय ? ॥ ९९८॥
सुक्षेत्रीं आणि वोलटें। बीजही पेरिलें गोमटें। तरी आलोट फळ भेटे। परी वेळे कीं गा ॥ ९९९॥
जोडला मार्गु प्रांजळु। मिनला सुसंगाचाही मेळु। तरी पाविजे वांचूनि वेळु। लागेचि कीं ॥ १०००॥
तैसा वैराग्यलाभु जाला। वरी सद्‌गुरुही भेटला। जीवीं अंकुरु फुटला। विवेकाचा ॥ १००१॥
तेणें ब्रह्म एक आथी। येर आघवीचि भ्रांती। हेही कीर प्रतीती। गाढ केली ॥ १००२॥
परी तेंचि जें परब्रह्म। सर्वात्मक सर्वोत्तम। मोक्षाचेंही काम। सरे जेथ ॥ १००३॥
यया तिन्ही अवस्था पोटीं। जिरवी जें गा किरीटी। तया ज्ञानासिही मिठी। दे जे वस्तु ॥ १००४॥
ऐक्याचें एकपण सरे। जेथ आनंदकणुही विरे। कांहींचि नुरोनि उरे। जें कांहीं गा ॥ १००५॥
तियें ब्रह्मीं ऐक्यपणें। ब्रह्मचि होऊनि असणें। तें क्रमेंचि करूनि तेणें। पाविजे पैं ॥ १००६॥
भुकेलियापासीं। वोगरिलें षड्रसीं। तो तृप्ति प्रतिग्रासीं। लाहे जेवीं ॥ १००७॥
तैसा वैराग्याचा वोलावा। विवेकाचा तो दिवा। आंबुथितां आत्मठेवा। काढीचि तो ॥ १००८॥
तरी भोगिजे आत्मऋद्धी। येवढी योग्यतेची सिद्धी। जयाच्या आंगीं निरवधी। लेणें जाली ॥ १००९॥
तो जेणें क्रमें ब्रह्म। होणें करी गा सुगम। तया क्रमाचें आतां वर्म। आईक सांगों ॥ १०१०॥

बुद्‌ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च ।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ॥ ५१॥

तरी गुरु दाविलिया वाटा। येऊन विवेकतीर्थतटा। धुऊनियां मळकटा। बुद्धीचा तेणें ॥ १०११॥
मग राहूनें उगळिली। प्रभा चंद्रें आलिंगिली। तैसी शुद्धत्वें जडली। आपणयां बुद्धि ॥ १०१२॥
सांडूनि कुळें दोन्ही। प्रियासी अनुसरे कामिनी। द्वंद्वत्यागें स्वचिंतनीं। पडली तैसी ॥ १०१३॥
आणि ज्ञान ऐसें जिव्हार। नेवों नेवों निरंतर। इंद्रियीं केले थोर। शब्दादिक जे ॥ १०१४॥
ते रश्मिजाळ काढलेया। मृगजळ जाय लया। तैसें वृत्तिरोधें तयां। पांचांही केलें ॥ १०१५॥
नेणतां अधमाचिया अन्ना। खादलिया कीजे वमना। तैसीं वोकविली सवासना। इंद्रियें विषयीं ॥ १०१६॥
मग प्रत्यगावृत्ती चोखटें। लाविलीं गंगेचेनि तटें। ऐसीं प्रायश्चित्तें धुवटें। केलीं येणें ॥ १०१७॥
पाठीं सात्विकें धीरें तेणें। शोधारलीं तियें करणें। मग मनेंसीं योगधारणें। मेळविलीं ॥ १०१८॥
तेवींचि प्राचीनें इष्टानिष्टें। भोगेंसीं येउनी भेटे। तेथ देखिलियाही वोखटें। द्वेषु न करी ॥ १०१९॥
ना गोमटेंचि विपायें। तें आणूनि पुढां सूये। तयालागीं न होये। साभिलाषु ॥ १०२०॥
यापरी इष्टानिष्टीं। रागद्वेष किरीटी। त्यजूनि गिरिकपाटीं । निकुंजीं वसे ॥ १०२१॥

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः ।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥ ५२॥

गजबजा सांडिलिया। वसवी वनस्थळिया। अंगाचियाचि मांदिया। एकलेया ॥ १०२२॥
शमदमादिकीं खेळे। न बोलणेंचि चावळे। गुरुवाक्याचेनि मेळें। नेणे वेळु ॥ १०२३॥
आणि आंगा बळ यावें। नातरी क्षुधा जावें। कां जिभेएचे पुरवावे। मनोरथ ॥ १०२४॥
भोजन करितांविखीं। ययां तिहींतें न लेखी। आहारीं मिती संतोषीं। माप न सूये ॥ १०२५॥
अशनाचेनि पावकें। हारपतां प्राणु पोखे। इतुकियाचि भागु मोटकें। अशन करी ॥ १०२६॥
आणि परपुरुषें कामिली। कुळवधू आंग न घाली। निद्रालस्या न मोकली। आसन तैसें ॥ १०२७॥
दंडवताचेनि प्रसंगें। भुयीं हन अंग लागे। वांचूनि येर नेघे। राभस्य तेथ ॥ १०२८॥
देहनिर्वाहापुरतें। राहाटवी हातांपायांतें। किंबहुना आपैतें। सबाह्य केलें ॥ १०२९॥
आणि मनाचा उंबरा। वृत्तीसी देखों नेदी वीरा। तेथ कें वाग्व्यापारा। अवकाशु असे ? ॥ १०३०॥
ऐसेनि देह वाचा मानस। हें जिणौनि बाह्यप्रदेश। आकळिलें आकाश। ध्यानाचें तेणें ॥ १०३१॥
गुरुवाक्यें उठविला। बोधीं निश्चयो आपुला। न्याहाळीं हातीं घेतला। आरिसा जैसा ॥ १०३२॥
पैं ध्याता आपणचि परी। ध्यानरूप वृत्तिमाझारीं। ध्येयत्वें घे हे अवधारीं। ध्यानरूढी गा ॥ १०३३॥
तेथ ध्येय ध्यान ध्याता। ययां तिहीं एकरूपता। होय तंव पंडुसुता। कीजे तें गा ॥ १०३४॥
म्हणौनि तो मुमुक्षु। आत्मज्ञानीं जाला दक्षु। परी पुढां सूनि पक्षु। योगाभ्यासाचा ॥ १०३५॥
अपानरंध्रद्वया। माझारीं धनंजया। पार्ष्णी पिडूनियां। कांवरुमूळ ॥ १०३६॥
आकुंचूनि अध। देऊनि तिन्ही बंध। करूनि एकवद। वायुभेदी ॥ १०३७॥
कुंडलिनी जागवूनि। मध्यमा विकाशूनि। आधारादि भेदूनि। आज्ञावरी ॥ १०३८॥
सहस्त्रदळाचा मेघु। पीयुषें वर्षोनि चांगु। तो मूळवरी वोघु। आणूनियां ॥ १०३९॥
नाचतया पुण्यगिरी। चिद्‌भैरवाच्या खापरीं। मनपवनाची खीच पुरी। वाढूनियां ॥ १०४०॥
जालिया योगाचा गाढा। मेळावा सूनि हा पुढां। ध्यान मागिलीकडां। स्वयंभ केलें ॥ १०४१॥
आणि ध्यान योग दोन्ही। इयें आत्मतत्वज्ञानीं। पैठा होआवया निर्विघ्नीं। आधींचि तेणें ॥ १०४२॥

वीतरागतेसारिखा। जोडूनि ठेविला सखा। तो आघवियाचि भूमिका-। सवें चाले ॥१०४३॥
पहावें दिसे तंववरी। दिठीतें न संडी दीप जरी। तरी कें आहे अवसरी। देखावया ॥१०४४॥
तैसें मोक्षीं प्रवर्तलया। वृत्ती ब्रह्मीं जाय लया। तंव वैराग्य आथी तया। भंगु कैचा ॥१०४५॥
म्हणौनि सवैराग्यु। ज्ञानाभ्यासु तो सभाग्यु। करूनि जाला योग्यु। आत्मलाभा ॥१०४६॥
ऐसी वैराग्याची आंगीं। बाणूनियां वज्रांगीं। राजयोगतुरंगीं। आरूढला ॥१०४७॥
वरी आड पडिलें दिठी। सानें थोर निवटी। तें बळीं विवेकमुष्टीं। ध्यानाचें खांडें ॥१०४८॥
ऐसेनि संसाररणाआंतु ।आंधारीं सूर्य तैसा असे जातु ।मोक्षविजयश्रीये वरैतु। होआवयालागीं ॥१०४९॥

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥५३॥

तेथ आडवावया आले। दोषवैरी जे धोपटिले। तयांमाजीं पहिलें। देहाहंकारु ॥१०५०॥
जो न मोकली मारुनी। जीवों नेदी उपजवोनि। विचंबवी खोडां घालुनी। हाडांचिया ॥१०५१॥
तयाचा देहदुर्ग हा थारा। मोडूनि घेतला तो वीरा। आणि बळ हा दुसरा। मारिला वैरी ॥१०५२॥
जो विषयाचेनि नांवें। चौगुणेंही वरी थांवे। जेणें मृतावस्था धांवे। सर्वत्र जगा ॥१०५३॥
तो विषय विषाचा अथावो। आघविया दोषांचा रावो। परी ध्यानखड्गाचा घावो। साहेल कैंचा ? ॥१०५४॥
आणि प्रिय विषयप्राप्ती। करी जया सुखाची व्यक्ती। तेचि घालूनि बुंथी। आंगीं जो वाजे ॥१०५५॥
जो सन्मार्गा भुलवी। मग अधर्माच्या आडवीं। सूनि वाघां सांपडवी। नरकादिकां ॥१०५६॥
तो विश्वासें मारितां रिपु। निवटूनि घातला दर्पु। आणि जयाचा अहा कंपु। तापसांसी ॥१०५७॥
क्रोधा ऐसा महादोखु। जयाचा देखा परिपाकु। भरिजे तंव अधिकु। रिता होय जो ॥१०५८॥
तो कामु कोणेच ठायीं। नसे ऐसें केलें पाहीं। कीं तेंचि क्रोधाही। सहजें आलें ॥१०५९॥
मुळाचें तोडणें जैसें। होय कां शाखोद्देशें। कामु नाशलेनि नाशे। तैसा क्रोधु ॥१०६०॥
म्हणौनि काम वैरी। जाला जेथ ठाणोरी। तेथ सरली वारी। क्रोधाचीही ॥१०६१॥
आणि समर्थु आपुला खोडा। शिसें वाहवी जैसा होडा। तैसा भुंजौनि जो गाढा। परीग्रहो ॥१०६२॥
जो माथांचि पालाणवी। अंगा अवगुण घालवी। जीवें दांडी घेववी। ममत्वाची ॥१०६३॥
शिष्यशास्त्रादिविलासें। मठादिमुद्रेचेनि मिसें। घातले आहाती फांसे। निःसंगा जेणें ॥१०६४॥
घरीं कुटुंबपणें सरे। तरी वनीं वन्य होऊनि अवतरे। नागवीयाही शरीरें। लागला आहे ॥१०६५॥
ऐसा दुर्जयो जो परीग्रहो। तयाचा फेडूनि ठावो। भवविजयाचा उत्साहो। भोगीतसे जो ॥१०६६॥
तेथ अमानित्वादि आघवे। ज्ञानगुणाचे जे मेळावे। ते कैवल्यदेशींचे आघवे। रावो जैसे आले ॥१०६७॥
तेव्हां सम्यक्ज्ञानाचिया। राणिवा उगाणूनि तया। परिवारु होऊनियां। राहत आंगें ॥१०६८॥
प्रवृत्तीचिये राजबिदीं। अवस्थाभेदप्रमदीं। कीजत आहे प्रतिपदीं। सुखाचें लोण ॥१०६९॥
पुढां बोधाचिये कांबीवरी। विवेकु दृश्याची मांदी सारी। योगभूमिका आरती करी। येती जैसिया ॥१०७०॥
तेथ ऋद्धिसिद्धींचीं अनेगें। वृंदें मिळती प्रसंगें। तिये पुष्पवर्षीं आंगें। नाहातसे तो ॥१०७१॥
ऐसेनि ब्रह्मैक्यासारिखें। स्वराज्य येतां जवळिकें। झळंबित आहे हरिखें। तिन्ही लोक ॥१०७२॥
तेव्हां वैरियां कां मैत्रियां। तयासि माझें म्हणावया। समानता धनंजया। उरेचिही ना ॥१०७३॥
हें ना भलतेणें व्याजें। तो जयातें म्हणे माझें। तें नोडवेचि कां दुजें। अद्वितीय जाला ॥१०७४॥

पैं आपुलिया एकी सत्ता। सर्वही कवळूनिया पंडुसुता। कहीं न लगती ममता। धाडिली तेणें ॥ १०७५ ॥
ऐसा जिंतिलिया रिपुवर्गु। अपमानिलिया हें जगु। अपैसा योगतुरंगु। स्थिर जाला ॥ १०७६ ॥
वैराग्याचें गाढलें। अंगी त्राण होतें भलें। तेंही नावेक ढिलें। तेव्हां करी ॥ १०७७ ॥
आणि निवटी ध्यानाचें खांडें। तें दुजें नाहींचि पुढें। म्हणौनि हातु आसुडें। वृत्तीचाही ॥ १०७८ ॥
जैसें रसौषध खरें। आपुलें काज करोनि पुरें। आपणही नुरे। तैसें होतसे ॥ १०७९ ॥
देखोनि ठाकिता ठावो। धांवता थिरावे पावो। तैसा ब्रह्मसामीप्यें थावो। अभ्यासु सांडी ॥ १०८० ॥
घडतां महोदधीसी। गंगा वेगु सांडी जैसी। कां कामिनी कांतापासीं। स्थिर होय ॥ १०८१ ॥
नाना फळतिये वेळे। केळीची वाढी मांटुळे। कां गांवापुढें वळे। मार्गु जैसा ॥ १०८२ ॥
तैसा आत्मसाक्षात्कारु। होईल देखोनि गोचरु। ऐसा साधनहतियेरु। हळुचि ठेवी ॥ १०८३ ॥
म्हणौनि ब्रह्मेंसी तया। ऐक्याचा समो धनंजया। होतसे तैं उपाया। वोहटु पडे ॥ १०८४ ॥
मग वैराग्याची गोंधळुक। जे ज्ञानाभ्यासाचें वार्धक्य। योगफळाचाही परिपाक। दशा जे कां ॥ १०८५ ॥
ते शांति पैं गा सुभगा। संपूर्ण ये तयाचिया आंगा। तैं ब्रह्म होआवया जोगा। होय तो पुरुषु ॥ १०८६ ॥
पुनवेहूनी चतुर्दशी। जेतुलें उणेपण शशी। कां सोळे पाऊनि जैसी। पंधरावी वानी ॥ १०८७ ॥
सागरींही पाणी वेगें। संचरे तें रूप गंगे। येर निश्चळ जें उगें। तें समुद्र जैसा ॥ १०८८ ॥
ब्रह्मा आणि ब्रह्महोतिये। योग्यते तैसा पाडु आहे। तेंचि शांतीचेनि लवलाहें। होय तो गा ॥ १०८९ ॥
पैं तेंचि होणेंनवीण। प्रतीती आलें जें ब्रह्मपण। ते ब्रह्म होती जाण। योग्यता येथ ॥ १०९० ॥

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥ ५४ ॥

ते ब्रह्मभावयोग्यता। पुरुषु तो मग पंडुसुता। आत्मबोधप्रसन्नता-। पदीं बैसे ॥ १०९१ ॥
जेणें निपजे रससोय। तो तापुही जैं जाय। तैं ते कां होय। प्रसन्न जैसी ॥ १०९२ ॥
नाना भरतिया लगबगा। शरत्काळीं सांडिजे गंगा। कां गीत रहातां उपांगा। वोहटु पडे ॥ १०९३ ॥
तैसा आत्मबोधीं उद्यमु। करितां होय जो श्रमु। तोही जेथें समु। होऊनि जाय ॥ १०९४ ॥
आत्मबोधप्रशस्ती। हे तिये दशेची ख्याती। ते भोगितसे महामती। योग्यु तो गा ॥ १०९५ ॥
तेव्हां आत्मत्वें शोचावें। कांहीं पावावया कामावें। हें सरलें समभावें। भरितें तया ॥ १०९६ ॥
उदया येतां गभस्ती। नाना नक्षत्रव्यक्ती। हारवीजती दीप्ती। आंगिका जेवीं ॥ १०९७ ॥
तेवीं उठतिया आत्मप्रथा। हे भूतभेदव्यवस्था। मोडीत मोडीत पार्था। वास पाहे तो ॥ १०९८ ॥
पाटियेवरील अक्षरें। जैसीं पुसतां येती करें। तैसीं हारपती भेदांतरें। तयाचिये दृष्टी ॥ १०९९ ॥
तैसेनि अन्यथा ज्ञानें। जियें घेपती जागरस्वप्नें। तियें दोन्ही केलीं लीनें। अव्यक्तामाजीं ॥ ११०० ॥
मग तेंही अव्यक्त। बोध वाढतां झिजत। पुरलां बोधीं समस्त। बुडोनि जाय ॥ ११०१ ॥
जैसी भोजनाच्या व्यापारीं। क्षुधा जिरत जाय अवधारीं। मग तृप्तीच्या अवसरीं। नाहींच होय ॥ ११०२ ॥
नाना चालीचिया वाढी। वाट होत जाय थोडी। मग पातला ठायीं बुडी। देऊनि निमे ॥ ११०३ ॥
कां जागृति जंव जंव उद्दीपे। तंव तंव निद्रा हारपे। मग जागीनलिया स्वरूपें। नाहींच होय ॥ ११०४ ॥
हें ना आपुलें पूर्णत्व भेटें। जेथ चंद्रासीं वाढी खुंटे। तेथ शुक्लपक्षु आटे। निःशेषु जैसा ॥ ११०५ ॥
तैसा बोध्यजात गिळितु। बोधु बोधें ये मज आंतु। मिसळला तेथ साद्यंतु। अबोधु गेला ॥ ११०६ ॥

तेव्हां कल्पांताचिये वेळे। नदी सिंधूचें पेंडवळें। मोडूनि भरलें जळें ।आब्रह्म जैसें ॥ ११०७॥
नाना गेलिया घट मठ। आकाश ठाके एकवट। कां जळोनि काष्टें काष्ठ। वन्हीचि होय ॥ ११०८॥
नातरी लेणियांचे ठसे। आटोनि गेलिया मुसे। नामरूप भेदें जैसें। सांडिजे सोनें ॥ ११०९॥
हेंही असो चेइलया। तें स्वप्न नाहीं जालया। मग आपणचि आपणयां। उरिजे जैसें ॥ १११०॥
तैसी मी एकवांचूनि कांहीं। तया तयाहीसकट नाहीं। हे चौथी भक्ति पाहीं। माझी तो लाहे ॥ ११११॥
येर आर्तु जिज्ञासु अर्थार्थी। हे भजती जिये पंथीं। ते तिन्ही पावोनी चौथी। म्हणिपत आहे ॥ १११२॥
येऱ्हवीं तिजी ना चौथी। हे पहिली ना सरती। पैं माझिये सहजस्थिती। भक्ति नाम ॥ १११३॥
जें नेणणें माझें प्रकाशूनि। अन्यथात्वें मातें दाऊनि। सर्वही सर्वीं भजौनि। बुझावीतसे जे ॥ १११४॥
जो जेथ जैसें पाहों बैसे। तया तेथ तैसेंचि असे। हें उजियेडें कां दिसे। अखंडें जेणें ॥ १११५॥
स्वप्नाचें दिसणें न दिसणें। जैसें आपलेनि असलेपणें। विश्वाचें आहे नाहीं जेणें। प्रकाशें तैसें ॥ १११६॥
ऐसा हा सहज माझा। प्रकाशु जो कपिध्वजा। तो भक्ति या वोजा। बोलिजे गा ॥ १११७॥
म्हणौनि आर्ताच्या ठायीं। हे आर्ति होऊनि पाहीं। अपेक्षणीय जें कांहीं । तें मीचि केला ॥ १११८॥
जिज्ञासुपुढां वीरेशा। हेंचि होऊनि जिज्ञासा। मी कां जिज्ञास्यु ऐसा। दाखविला ॥ १११९॥
हेंचि होऊनि अर्थना। मीचि माझ्या अर्थीं अर्जुना। करूनि अर्थाभिधाना। आणी मातें ॥ ११२०॥
एवं घेऊनि अज्ञानातें। माझी भक्ति जे हे वर्ते। ते दावी मज द्रष्टयातें। दृश्य करूनि ॥ ११२१॥
येथें मुखचि दिसे मुखें। या बोला कांहीं न चुके। तरी दुजेपण हें लटिकें। आरिसा करी ॥ ११२२॥
दिठी चंद्रचि घे साचें। परी येतुलें हें तिमिराचें। जे एकचि असे तयाचे। दोनी दावी ॥ ११२३॥
तैसा सर्वत्र मीचि मियां। घेपतसें भक्ति इया। परी दृश्यत्व हें वायां। अज्ञानवशें ॥ ११२४॥
तें अज्ञान आतां फिटलें। माझें दृष्टृत्व मज भेटलें। निजबिंबीं एकवटलें। प्रतिबिंब जैसें ॥ ११२५॥
पैं जेव्हांही असे किडाळ। तेव्हांही सोनेंचि अढळ। परी तें कीड गेलिया केवळ। उरे जैसें ॥ ११२६॥
हां गा पूर्णिमे आधीं कायी। चंद्र सावयवु नाहीं ?। परी तिये दिवशीं भेटे पाहीं। पूर्णता तया ॥ ११२७॥
तैसा मीचि ज्ञानद्वारें। दिसें परी ह्स्तांतरें। मग दृष्टृत्व तें सरे। मियांचि मी लाभें ॥ ११२८॥
म्हणौनि दृश्यपथा-। अतीतु माझा पार्था। भक्तियोगु चवथा। म्हणितला गा ॥ ११२९॥

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः ।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥ ५५॥

या ज्ञान भक्ति सहज। भक्तु एकवटला मज। मीचि केवळ हें तुज। श्रुतही आहे ॥ ११३०॥
जे उभऊनियां भुजा। ज्ञानिया आत्मा माझा। हे बोलिलों कपिध्वजा। सप्तमाध्यायीं ॥ ११३१॥
ते कल्पादीं भक्ति मियां। श्रीभागवतमिषें ब्रह्मया। उत्तम म्हणौनि धनंजया। उपदेशिली ॥ ११३२॥
ज्ञानी इयेतें स्वसंवित्ती। शैव म्हणती शक्ती। आम्ही परम भक्ती। आपुली म्हणो ॥ ११३३॥
हे मज मिळतिये वेळे। तया क्रमयोगियां फळे। मग समस्तही निखिळें। मियांचि भरे ॥ ११३४॥
तेथ वैराग्य विवेकेंसी। आटे बंध मोक्षेंसीं। वृत्ती तिये आवृत्तीसीं। बुडोनि जाय ॥ ११३५॥
घेऊनि ऐलपणातें। परत्व हारपें जेथें। गिळूनि चाऱ्ही भूतें। आकाश जैसें ॥ ११३६॥
तया परी थडथाद। साध्यसाधनातीत शुद्ध। तें मी होऊनि एकवद। भोगितो मातें ॥ ११३७॥
घडोनि सिंधूचिया आंगा। सिंधूवरी तळपे गंगा। तैसा पाडु तया भोगा। अवधारी जो ॥ ११३८॥

कां आरिसयासि आरिसा। उटूनि दाविलिया जैसा। देखणा अतिशयो तैसा। भोगणा तिये ॥ ११३९ ॥
हे असो दर्पणु नेलिया। तो मुख बोधुही गेलिया। देखलेंपण एकलेया। आस्वादिजे जेवीं ॥ ११४०॥
चेइलिया स्वप्न नाशे। आपलें ऐक्यचि दिसे। ते दुजेनवीण जैसें। भोगिजे का ॥ ११४१॥
तोचि जालिया भोगु तयाचा। न घडे हा भावो जयांचा। तिहीं बोलें केवीं बोलाचा। उच्चारु कीजे ॥ ११४२॥
तयांच्या नेणों गांवीं। रवी प्रकाशी हन दिवी। कीं व्योमालागीं मांडवी। उभिली तिहीं ॥ ११४३॥
हां गा राजन्यत्व नव्हतां आंगीं। रावो रायपण काय भोगी ? । कां आंधारु हन आलिंगी। दिनकरातें ? ॥ ११४४॥
आणि आकाश जें नव्हे। तया आकाश काय जाणवे ? । रत्नाच्या रूपीं मिरवे। गुंजांचें लेणें ? ॥ ११४५॥
म्हणौनि मी होणें नाहीं। तया मीचि आहें केहीं। मग भजेल हें कायी। बोलों कीर ॥ ११४६॥
यालागीं तो क्रमयोगी। मी जालाचि मातें भोगी। तारुण्य कां तरुणांगीं। जियापरी ॥ ११४७॥
तरंग सर्वांगीं तोय चुंबी। प्रभा सर्वत्र विलसे बिंबीं। नाना अवकाश नभीं। लुंठतु जैसा ॥ ११४८॥
तैसा रूप होऊनि माझें। मातें क्रियावीण तो भजे। अलंकारु का सहजें। सोनयातें जेवीं ॥ ११४९॥
का चंदनाची द्रुती जैसी। चंदनीं भजे अपैसी। का अकृत्रिम शशीं। चंद्रिका ते ॥ ११५०॥
तैसी क्रिया कीर न साहे। तऱ्ही अद्वैतीं भक्ति आहे। हें अनुभवाचिजोगें नव्हे। बोलाऐसें ॥ ११५१॥
तेव्हां पूर्वसंस्कार छंदें। जें कांहीं तो अनुवादे। तेणें आळविलेनि वो दें। बोलतां मीचि ॥ ११५२॥
बोलतया बोलताचि भेटे। तेथें बोलिलें हें न घटे। तें मौन तंव गोमटें। स्तवन माझें ॥ ११५३॥
म्हणौनि तया बोलतां। बोली बोलतां मी भेटतां। मौन होय तेणें तत्वतां। स्तवितो मातें ॥ ११५४॥
तैसेंचि बुद्धी का दिठी। जें तो देखों जाय किरीटी। तें देखणें दृश्य लोटी। देखतेंचि दावी ॥ ११५५॥
आरिसया आधीं जैसें। देखतेंचि मुख दिसेअ। तयाचें देखणें तैसें। मेळवी द्रष्टें ॥ ११५६॥
दृश्य जाउनियां द्रष्टें। द्रष्टयासीचि जैं भेटे। तैं एकलेपणें न घटे। द्रष्टेपणही ॥ ११५७॥
तेथ स्वप्नींचिया प्रिया। चेवोनि झोंबो गेलिया। ठायिजे दोन्ही न होनियां। आपणचि जैसें ॥ ११५८॥
का दोहीं काष्ठाचिये घृष्टी-। माजीं वन्हि एक उठी। तो दोन्ही हे भाष आटी। आपणचि होय ॥ ११५९॥
नाना प्रतिबिंब हातीं। घेऊं गेलिया गभस्ती। बिंबताही असती। जाय जैसी ॥ ११६०॥
तैसा मी होऊनि देखतें। तो घेऊं जाय दृश्यातें। तेथ दृश्य ने थितें। द्रष्टृत्वेंसीं ॥ ११६१॥
रवि आंधारु प्रकाशिता। नुरेचि जेवीं प्रकाश्यता। तेंवीं दृश्यीं नाही द्रष्टृता। मी जालिया ॥ ११६२॥
मग देखिजे ना न देखिजे। ऐसी जे दशा निपजे। ते तें दर्शन माझें। साचोकारें ॥ ११६३॥
तें भलतयाही किरीटी। पदार्थाचिया भेटी। द्रष्टृदृश्यातीता दृष्टी। भोगितो सदा ॥ ११६४॥
आणि आकाश हें आकाशें। दाटलें न ढळें जैसें। मियां आत्मेन आपणपें तैसें। जालें तया ॥ ११६५॥
कल्पांतीं उदक उदकें। रुंधिलिया वाहों ठाके। तैसा आत्मेनि मियां येकें। कोंदला तो ॥ ११६६॥
पावो आपणपयां वोळघे ? । केवीं वन्हि आपणपयां लागे ?। आपणपां पाणी रिघे। स्नाना कैसें ? ॥ ११६७॥
म्हणौनि सर्व मी जालेपणें। ठेलें तया येणें जाणें। तेंचि गा यात्रा करणें। अद्वया मज ॥ ११६८॥
पैं जळावरील तरंगु। जरी धाविन्नला सवेगु। तरी नाहीं भूमिभागु। क्रमिला तेणें ॥ ११६९॥
जें सांडावें कां मांडावें। जें चालणें जेणें चालावें। तें तोयचि एक आघवें। म्हणौनियां ॥ ११७०॥
गेलियाही भलतेउता। उदकपणें पंडुसुता। तरंगाची एकात्मता। न मोडेचि जेवीं ॥ ११७१॥
तैसा मीपणें हा लोटला। तो आघवेंयाचि मजआंतु आला। या यात्रा होय भला। कापडी माझा ॥ ११७२॥
आणि शरीर स्वभाववशें। कांहीं येक करूं जरी बैसे। तरी मीचि तो तेणें मिषें। भेटे तया ॥ ११७३॥
तेथ कर्म आणि कर्ता। हें जाऊनि पंडुसुता। मियां आत्मेनि मज पाहतां। मीचि होय ॥ ११७४॥

पैं दर्पणातें दर्पणें। पाहिलिया होय न पाहणें। सोनें झांकिलिया सुवर्णें। ना झांकें जेवीं ॥११७५॥
दीपातें दीपें प्रकाशिजे। तें न प्रकाशणेंचि निपजे। तैसें कर्म मियां कीजे। तें करणें कैंचें ? ॥११७६॥
कर्मही करितचि आहे। जैं करावें हें भाष जाये। तैं न करणेंचि होये। तयाचें केलें ॥११७७॥
क्रियाजात मी जालेपणें। घडे कांहींचि न करणें। तयाचि नांव पूजणें। खुणेचें माझें ॥११७८॥
म्हणौनि करीतयाही वोजा। तें न करणें हेंचि कपिध्वजा। निफजे तिया महापूजा। पूजी तो मातें ॥११७९॥
एवं तो बोले तें स्तवन। तो देखे तें दर्शन। अद्वया मज गमन। तो चाले तेंचि ॥११८०॥
तो करी तेतुली पूजा। तो कल्पी तो जपु माझा। तो असे तेचि कपिध्वजा। समाधी माझी ॥११८१॥
जैसें कनकेंसी कांकणें। असिजे अनन्यपणें। तो भक्तियोगें येणें। मजसीं तैसा ॥११८२॥
उदकीं कल्लोळु। कापुरीं परीमळु। रत्नीं उजाळु। अनन्यु जैसा ॥११८३॥
किंबहुना तंतूंसीं पटु। कां मृत्तिकेसीं घटु। तैसा तो एकवटु। मजसीं माझा ॥११८४॥
इया अनन्यसिद्धा भक्ती। या आघवाचि दृश्यजातीं। मज आपणपेंया सुमती। द्रष्टयातें जाण ॥११८५॥
तिन्ही अवस्थांचेनि द्वारें। उपाध्युपहिताकारें। भावाभावरूप स्फुरे। दृश्य जें हें ॥११८६॥
तें हें आघवेंचि मी द्रष्टा। ऐसिया बोधाचा माजिवटा। अनुभवाचा सुभटा। धेंडा तो नाचे ॥११८७॥
रज्जु जालिया गोचरु। आभासतां तो व्याळाकारु। रज्जुचि ऐसा निर्धारु। होय जेवीं ॥११८८॥
भांगारापरतें कांहीं। लेणें गुंजहीभरी नाहीं। हें आटुनियां ठायीं। कीजे जैसे ॥११८९॥
उदका येकापरतें । तरंग नाहींचि हें निरुतें। जाणोनि तया आकारातें। न घेपे जेवीं ॥११९०॥
नातरी स्वप्नविकारां समस्तां। चेऊनियां उमाणें घेतां। तो आपणयापरौता। न दिसे जैसा ॥११९१॥
तैसें जें कांहीं आथी नाथी। येणें होय ज्ञेयस्फुर्ती। तें ज्ञाताचि मी हें प्रतीती। होऊनि भोगी ॥११९२॥
जाणे अजु मी अजरु। अक्षयो मी अक्षरु। अपूर्वु मी अपारु। आनंदु मी ॥११९३॥
अचळु मी अच्युतु। अनंतु मी अद्वैतु। आद्यु मी अव्यक्तु। व्यक्तुही मी ॥११९४॥
ईश्य मी ईश्वरु। अनादि मी अमरु। अभय मी आधारु। आधेय मी ॥११९५॥
स्वामी मी सदोदितु। सहजु मी सततु। सर्व मी सर्वगतु। सर्वातीतु मी ॥११९६॥
नवा मी पुराणु। शून्यु मी संपूर्णु। स्थुलु मी अणु। जें कांहीं तें मी ॥११९७॥
अक्रियु मी येकु। असंगु मी अशोकु। व्यापु मी व्यापकु। पुरुषोत्तमु मी ॥११९८॥
अशब्दु मी अश्रोत्रु। अरूपु मी अगोत्रु। समु मी स्वतंत्रु। ब्रह्म मी परु ॥११९९॥
ऐसें आत्मत्वें मज एकातें। इया अद्वयभक्ती जाणोनि निरुतें। आणि याही बोधा जाणतें। तेंही मीचि जाणें ॥१२००॥
पैं चेइलेयानंतरें। आपुलें एकपण उरे। तेंही तोंवरी स्फुरे। तयाशींचि जैसें ॥१२०१॥
कां प्रकाशतां अर्कु। तोचि होय प्रकाशकु। तयाही अभेदा द्योतकु। तोचि जैसा ॥१२०२॥
तैसा वेद्यांच्या विलयीं। केवळ वेएदकु उरे पाहीं। तेणें जाणवें तया तेंही। हेंही जो जाणे ॥१२०३॥
तया अद्वयपणा आपुलिया। जाणती ज्ञप्ती जे धनंजया। ते ईश्वरचि मी हे तया। बोधासि ये ॥१२०४॥
मग द्वैताद्वैतातीत। मीचि आत्मा एकु निभ्रांत। हें जाणोनि जाणणें जेथ। अनुभवीं रिघे ॥१२०५॥
तेथ चेइलियां येकपण। दिसे जे आपुलया आपण। तेंही जातां नेणों कोण। होईजे जेवीं ॥१२०६॥
कां डोळां देखतिये क्षणीं। सुवर्णपण सुवर्णीं। नाटितां होय आटणी। अळंकाराचीही ॥१२०७॥
नाना लवण तोय होये। मग क्षारता तोयत्वें राहे। तेही जिरतां जेवीं जाये। जालेपण तें ॥१२०८॥
तैसा मी तो हें जें असे । तें स्वानंदानुभवसमरसें। कालवूनिया प्रवेशे। मजचिमाजीं ॥१२०९॥
आणि तो हे भाष जेथ जाये। तेथे मी हें कोण्हासी आहे। ऐसा मी ना तो तिये सामाये। माझ्याचि रूपीं ॥१२१०॥

जेव्हां कापुर जळों सरे। तयाचि नाम अग्नि पुरेए। मग उभयतातीत उरे। आकाश जेवीं ॥ १२११ ॥
का धाडलिया एका एकु। वाढे तो शून्य विशेखु। तैसा आहे नाहींचा शेखु। मीचि मग आथी ॥ १२१२ ॥
तेथ ब्रह्मा आत्मा ईशु। यया बोला मोडे सौरसु। न बोलणें याही पैसु। नाहीं तेथ ॥ १२१३ ॥
न बोलणेंही न बोलोनी। तें बोलिजे तोंड भरुनी। जाणिव नेणिव नेणोनी। जाणिजे तें ॥ १२१४ ॥
तेथ बुझिजे बोधु बोधें। आनंदु घेपे आनंदें। सुखावरी नुसधें। सुखचि भोगिजे ॥ १२१५ ॥
तेथ लाभु जोडला लाभा। प्रभा आलिंगिली प्रभा। विस्मयो बुडाला उभा। विस्मयामाजीं ॥ १२१६ ॥
शमु तेथ सामावला। विश्रामु विश्रांति आला। अनुभवु वेडावला। अनुभूतिपणें ॥ १२१७ ॥
किंबहुना ऐसें निखळ। मीपण जोडे तया फळ। सेवूनि वेली वेल्हाळ। क्रमयोगाची ते ॥ १२१८ ॥
पैं क्रमयोगिया किरीटी। चक्रवर्तीच्या मुकुटीं। मी चिद्रत्न तें साटोवाटीं। होय तो माझा ॥ १२१९ ॥
कीं क्रमयोगप्रासादाचा। कळसु जो हा मोक्षाचा। तयावरील अवकाशाचा। उवावो जाला तो ॥ १२२० ॥
नाना संसार आडवीं। क्रमयोग वाट बरवी। जोडिली ते मदैक्यगांवीं। पैठी जालीसे ॥ १२२१ ॥
हें असो क्रमयोगबोधें। तेणें भक्तिचिह्नांगें। मी स्वानंदोदधी वेगें। ठाकिला कीं गा ॥ १२२२ ॥
हा ठायवरी सुवर्मा। क्रमयोगीं आहे महिमा। म्हणौनि वेळोवेळां तुम्हां। सांगतों आम्ही ॥ १२२३ ॥
पैं देशें काळें पदार्थें। साधूनि घेइजे मातें। तैसा नव्हे मी आयतें। सर्वांचें सर्वही ॥ १२२४ ॥
म्हणौनि माझ्या ठायीं। जाचावें न लगे कांहीं। मी लाभें इयें उपायीं। साचचि गा ॥ १२२५ ॥
एक शिष्य एक गुरु। हा रूढला साच व्यवहारु। तो मत्प्राप्तिप्रकारु। जाणावया ॥ १२२६ ॥
अगा वसुधेच्या पोटीं। निधान सिद्ध किरीटी। वन्हि सिद्ध काष्ठीं। वोहां दूध ॥ १२२७ ॥
परी लाभे तें असतें। तया कीजे उपायातें। येर सिद्धचि तैसा तेथें। उपायीं मी ॥ १२२८ ॥
हा फळहीवरी उपावो। कां पां प्रस्तावीतसे देवो। हे पुसतां परी अभिप्रावो। येथिंचा ऐसा ॥ १२२९ ॥
जे गीतार्थाचें चांगावें। मोक्षोपायपर आघवें। आन शास्त्रोपाय कीं नव्हे। प्रमाणसिद्ध ॥ १२३० ॥
वारा आभाळचि फेडी। वांचूनि सूर्यातें न घडी। कां हातु बाबुळी धाडी। तोय न करी ॥ १२३१ ॥
तैसा आत्मदर्शनीं आडळु। असे अविद्येचा जो मळु। तो शास्त्र नाशी येरु निर्मळु। मी प्रकाशें स्वयें ॥ १२३२ ॥
म्हणौनि आघवींचि शास्त्रें। अविद्याविनाशाचीं पात्रें। वांचोनि न होतीं स्वतंत्रें। आत्मबोधीं ॥ १२३३ ॥
तया अध्यात्मशास्त्रांसीं। जैं साचपणाची ये पुसी। तैं येइजे जया ठायासी। ते हे गीता ॥ १२३४ ॥
भानुभूषिता प्राचिया। सतेजा दिशा आघविया। तैसी शास्त्रेश्वरा गीता या। सनाथें शास्त्रें ॥ १२३५ ॥
हें असो येणें शास्त्रेश्वरें। मागां उपाय बहुवे विस्तारें। सांगितला जैसा करें। घेवों ये आत्मा ॥ १२३६ ॥
परी प्रथमश्रवणासवें। अर्जुना विपायें हें फावे। हा भावो सकणवे। धरूनि श्रीहरी ॥ १२३७ ॥
तेंचि प्रमेय एक वेळ। शिष्यीं होआवया अढळ। सांगतसे मुकुल। मुद्रा आतां ॥ १२३८ ॥
आणि प्रसंगें गीता। ठावोही हा संपता। म्हणौनि दावी आद्यंता। एकार्थत्व ॥ १२३९ ॥
जे ग्रंथाच्या मध्यभागीं। नाना अधिकारप्रसंगीं। निरूपण अनेगीं। सिद्धांतीं केलें ॥ १२४० ॥
तरी तेतुलेही सिद्धांत। इयें शास्त्रीं प्रस्तुत। हे पूर्वापर नेणत। कोण्ही जैं मानी ॥ १२४१ ॥
तैं महासिद्धांताचा आवांका। सिद्धांतकक्षा अनेका। भिडऊनि आरंभु देखा। संपवीतु असे ॥ १२४२ ॥
एथ अविद्यानाशु हें स्थळ। तेणें मोक्षोपादान फळ। या दोहीं केवळ। साधन ज्ञान ॥ १२४३ ॥
हें इतुलेंचि नानापरी। निरूपिलें ग्रंथविस्तारीं। तें आतां दोहीं अक्षरीं। अनुवादावें ॥ १२४४ ॥
म्हणौनि उपेयही हातीं। जालया उपायस्थिती। देव प्रवर्तले तें पुढती। येणेंचि भावें ॥ १२४५ ॥

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः ।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥ ५६॥

मग म्हणे गा सुभटा। तो क्रमयोगिया निष्ठा। मी होउनी होय पैठा। माझ्या रूपीं ॥ १२४६॥
स्वकर्माच्या चोखौळीं। मज पूजा करूनि भलीं। तेणें प्रसादें आकळी। ज्ञाननिष्ठेतें ॥ १२४७॥
ते ज्ञाननिष्ठा जेथ हातवसे। तेथ भक्ति माझी उल्लासे। तिया भजन समरसें। सुखिया होय ॥ १२४८॥
आणि विश्वप्रकाशितया। आत्मया मज आपुलिया। अनुसरे जो करूनियां। सर्वत्रता हे ॥ १२४९॥
सांडूनि आपुला आडळ। लवण आश्रयी जळ। कां हिंडोनि राहे निश्चळ। वायु व्योमीं ॥ १२५०॥
तैसा बुद्धी वाचा कायें। जो मातें आश्रऊनि ठाये। तो निषिद्धेंही विपायें। कर्मे करूं ॥ १२५१॥
परी गंगेच्या संबंधीं । बिदी आणि महानदी। येक तेवीं माझ्या बोधीं। शुभाशुभांसी ॥ १२५२॥
कां बावनें आणि धुरें। हा निवाडु तंवचि सरे। जंव न घेपती वैश्वानरें। कवळूनि दोन्ही ॥ १२५३॥
ना पांचिकें आणि सोळें। हें सोनया तंवचि आलें। जंव परिसु आंगमेळें। एकवटीना ॥ १२५४॥
तैसें शुभाशुभ ऐसें। हें तंवचिवरी आभासे। जंव येकु न प्रकाशे। सर्वत्र मी ॥ १२५५॥
अगा रात्री आणि दिवो। हा तंवचि द्वैतभावो। जंव न रिगिजे गांवो। गभस्तीचा ॥ १२५६॥
म्हणौनि माझिया भेटी। तयाचीं सर्व कर्मे किरीटी। जाऊनि बैसे तो पाटीं। सायुज्याच्या ॥ १२५७॥
देशें काळें स्वभावें। वेंचु जया न संभवे। तें पद माझें पावे। अविनाश तो ॥ १२५८॥
किंबहुना पंडुसुता। मज आत्मयाची प्रसन्नता। लाहे तेणें न पविजतां। लाभु कवणु असे ॥ १२५९॥

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः ।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥ ५७॥

याकारणें गा तुवां इया। सर्व कर्मा आपुलिया। माझ्या स्वरूपीं धनंजया। संन्यासु कीजे ॥ १२६०॥
परी तोचि संन्यासु वीरा। करणीयेचा झणें करा। आत्मविवेकीं धरा। चित्तवृत्ति हे ॥ १२६१॥
मग तेणें विवेकबळें। आपणपें कर्मावेगळें। माझ्या स्वरूपीं निर्मळें। देखिजेल ॥ १२६२॥
आणि कर्माचि जन्मभोये। प्रकृति जे का आहे। ते आपणयाहूनि बहुवे। देखसी दूरी ॥ १२६३॥
तेथ प्रकृति आपणयां। वेगळी नुरे धनंजया। रूपेंवीण का छाया। जियापरी ॥ १२६४॥
ऐसेनि प्रकृतिनाशु। जालया कर्मसंन्यासु। निफजेल अनायासु। सकारणु ॥ १२६५॥
मग कर्मजात गेलया। मी आत्मा उरें आपणपयां। तेथ बुद्धि घापे करूनियां। पतिव्रता ॥ १२६६॥
बुद्धि अनन्य येणें योगें। मजमाजीं जैं रिगे। तैं चित्त चैत्यत्यागें। मातेंचि भजे ॥ १२६७॥
ऐसें चैत्यजातें सांडिलें। चित्त माझ्या ठायीं जडलें। ठाके तैसें वहिलें। सर्वदा करी ॥ १२६८॥

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि ॥ ५८॥

मग अभिन्ना इया सेवा। चित्त मियांचि भरेल जेधवां। माझा प्रसादु जाण तेधवां। संपूर्ण जाहला ॥ १२६९॥
तेथ सकळ दुःखधामें। भुंजीजती जियें मृत्युजन्में। तियें दुर्गमेंचि सुगमें। होती तुज ॥ १२७०॥

सूर्याचेनि सावायें। डोळा सावाइला होये। तैं अंधाराचा आहे। पाडु तया ? ॥१२७१॥
तैसा माझेनि प्रसादें। जीवकणु जयाचा उपमर्दे। तो संसराचेनी बाधे। बागुलें केवीं ? ॥१२७२॥
म्हणौनि धनंजया। तूं संसारदुर्गती यया। तरसील माझिया। प्रसादास्तव ॥१२७३॥
अथवा हन अहंभावें। माझें बोलणें हें आघवें। कानामनाचिये शिंवे। नेंदिसी टेंकों ॥१२७४॥
तरी नित्य मुक्त अव्ययो। तूं आहासि तें होऊनि वावो। देहसंबंधाचा घावो। वाजेल आंगीं ॥१२७५॥
जया देहसंबंधा आंतु। प्रतिपदीं आत्मघातु। भुंजतां उसंतु। कहींचि नाहीं ॥१२७६॥
येवढेनि दारुणें। निमणेनवीण निमणें। पडेल जरी बोलणें। नेघसी माझें ॥१२७७॥

यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे ।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ॥५९॥

पथ्यद्वेषिया पोषी ज्वरु। कां दीपद्वेषिया अंधकारु। विवेकद्वेषें अहंकारु। पोषूनि तैसा ॥१२७८॥
स्वदेहा नाम अर्जुनु। परदेहा नाम स्वजनु। संग्रामा नाम मलिनु। पापाचारु ॥१२७९॥
इया मती आपुलिया। तिघां तीन नामें ययां। ठेऊनियां धनंजया। न झुंजें ऐसा ॥१२८०॥
जीवामाजीं निष्टंकु। करिसी जो आत्यंतिकु। तो वायां धाडील नैसर्गिकु। स्वभावोचि तुझा ॥१२८१॥
आणि मी अर्जुन हे आत्मिक। ययां वधु करणें हें पातक। हे मायावांचूनि तात्त्विक। कांहीं आहे ? ॥१२८२॥
आधीं जुंझार तुवां होआवें। मग झुंजावया शस्त्र घेयावें। कां न जुंझावया करावें। देवांगण ॥१२८३॥
म्हणौनि न झुंजणें। म्हणसी तें वायाणें। ना मानूं लोकपणें। लोकदृष्टीही ॥१२८४॥
तऱ्ही न झुंजें ऐसें। निष्टंकीसी जें मानसें। तें प्रकृति अनारिसें। करवीलचि ॥१२८५॥

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा ।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोपि तत् ॥६०॥

पैं पूर्वे वाहतां पाणी। पव्हिजे पश्चिमेचे वाहणीं। तरी आग्रहोचि उरे तें आणी। आपुलिया लेखा ॥१२८६॥
कां साळीचा कणु म्हणे। मी नुगवें साळीपणें। तरी आहे आन करणें। स्वभावासी ? ॥१२८७॥
तैसा क्षात्रंस्कारसिद्धा। प्रकृती घडिलासी प्रबुद्धा। आता नुठी म्हणसी हा धांदा। परी उठवीजसीचि तूं ॥१२८८॥
पैं शौर्य तेज दक्षता। एवमादिक पंडुसुता । गुण दिधले जन्मतां। प्रकृती तुज ॥१२८९॥
तरी तयाचिया समवाया-। अनुरूप धनंजया। न करितां उगलियां। नयेल असों ॥१२९०॥
म्हणौनियां तिहीं गुणीं। बांधिलासि तूं कोदंडपाणी। त्रिशुद्धी निघसी वाहणीं। क्षात्राचिया ॥१२९१॥
ना हें आपुलें जन्ममूळ। न विचारीतचि केवळ। न झुंजें ऐसें अढळ। व्रत जरी घेसी ॥१२९२॥
तरी बांधोनि हात पाये। जो रथीं घातला होये। तो न चाले तरी जाये। दिगंता जेवीं ॥१२९३॥
तैसा तूं आपुलियाकडुनी। मीं कांहींच न करीं म्हणौनि। ठासी परी भरंवसेनि। तूंचि करिसी ॥१२९४॥
उत्तरु वैराटींचा राजा। पळतां तूं कां निघालासी झुंजा ?। हा क्षात्रस्वभावो तुझा। झुंजवील तुज ॥१२९५॥
महावीर अकरा अक्षौहिणी। तुवां येकें नागविले रणांगणीं। तो स्वभावो कोदंडपाणी। झुंजवील तूंतें ॥१२९६॥
हां गा रोगु कायी रोगिया। आवडे दरिद्र दरिद्रिया ?। परी भोगविजे बळिया। अदृष्टें जेणें ॥१२९७॥
तें अदृष्ट अनारिसें। न करील ईश्वरवशें। तो ईश्वरुही असे । हृदयीं तुझ्या ॥१२९८॥

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥ ६१॥

सर्व भूतांच्या अंतरीं। हृदय महाअंबरीं। चिद्वृत्तीच्या सहस्त्रकरीं। उदयला असे जो ॥ १२९९ ॥
अवस्थात्रय तिन्हीं लोक। प्रकाशूनि अशेख। अन्यथादृष्टि पांथिक। चेवविले ॥ १३००॥
वेद्योदकाच्या सरोवरीं। फांकतां विषयकल्हारीं। इंद्रियषट्पदा चारी। जीवभ्रमरातें ॥ १३०१॥
असो रूपक हें तो ईश्वरु। सकल भूतांचा अहंकारु। पांघरोनि निरंतरु। उल्हासत असे ॥ १३०२॥
स्वमायेचें आडवस्त्र। लावूनि एकला खेळवी सूत्र। बाहेरी नटी छायाचित्र। चौऱ्याशीं लक्ष ॥ १३०३॥
तया ब्रह्मादिकीटांता। अशेषांही भूतजातां। देहाकार योग्यता। पाहोनि दावी ॥ १३०४॥
तेथ जें देह जयापुढें। अनुरूपपणें मांडे। तें भूत तया आरूढे। हें मी म्हणौनि ॥ १३०५॥
सूत सूतें गुंतलें। तृण तृणचि बांधलें। कां आत्मबिंबा घेतलें। बाळकें जळीं ॥ १३०६॥
तयापरी देहाकारें। आपणपेंचि दुसरें। देखोनि जीव आविष्करें। आत्मबुद्धि ॥ १३०७॥
ऐसेनि शरीराकारीं। यंत्रीं भूतें अवधारीं। वाहूनि हालवी दोरी। प्राचीनाची ॥ १३०८॥
तेथ जया जें कर्मसूत्र। मांडूनि ठेविलें स्वतंत्र। तें तिये गती पात्र। होंचि लागे ॥ १३०९॥
किंबहुना धनुर्धरा। भूतांतें स्वर्गसंसारा । -माजीं भोवंडी तृणें वारा। आकाशीं जैसा ॥ १३१०॥
भ्रामकाचेनि संगें। जैसें लोहो वेढा रिगे। तैसीं ईश्वरसत्तायोगें। चेष्टती भूतें ॥ १३११॥
जैसे चेष्टा आपुलिया। समुद्रादिक धनंजया। चेष्टती चंद्राचिया। सन्निधी येकीं ॥ १३१२॥
तया सिंधू भरितें दाटें। सोमकांता पाझरु फुटे। कुमुदांचकोरांचा फिटे। संकोचु तो ॥ १३१३॥
तैसीं बीजप्रकृतिवशें। अनेकें भूतें येकें ईशें। चेष्टवीजती तो असे । तुझ्या हृदयीं ॥ १३१४॥
अर्जुनपण न घेतां। मी ऐसें जें पंडुसुता। उठतसे तें तत्वता। तयाचें रूप ॥ १३१५॥
यालागीं तो प्रकृतीतें। प्रवर्तवील हें निरुतें। आणि तें झुंजवील तूंतें। न झुंजशी जऱ्ही ॥ १३१६॥
म्हणौनि ईश्वर गोसावी। तेणें प्रकृती हे नेमावी। तिया सुखें राबवावीं। इंद्रियें आपुलीं ॥ १३१७॥
तूं करणें न करणें दोन्हीं। लाऊनि प्रकृतीच्या मानीं। प्रकृतीही कां अधीनी। हृदयस्था जया ॥ १३१८॥

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥ ६२॥

तया अहं वाचा चित्त आंग। देऊनिया शरण रिग। महोदधी कां गांग। रिगालें जैसें ॥ १३१९॥
मग तयाचेनि प्रसादें। सर्वोपशांतिप्रमदे। कांतु होऊनिया स्वानंदें। स्वरूपींचि रमसी ॥ १३२०॥
संभूति जेणें संभवे। विश्रांति जेथें विसंवे। अनुभूतिही अनुभवे। अनुभवा जया ॥ १३२१॥
तिये निजात्मपदींचा रावो। होऊनि ठाकसी अव्यवो। म्हणे लक्ष्मीनाहो। पार्था तूं गा ॥ १३२२॥

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया ।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ६३॥

हें गीता नाम विख्यात। सर्ववाङ्मयाचें मथित। आत्मा जेणें हस्तगत। रत्न होय ॥ १३२३॥
ज्ञान ऐसिया रूढी। वेदांतीं जयाची प्रौढी। वानितां कीर्ति चोखडी। पातली जगीं ॥ १३२४॥
बुद्धयादिकें डोळसें। हें जयाचें कां कडवसें। मी सर्वद्रष्टाही दिसें। पाहला जया ॥ १३२५॥
तें हें गा आत्मज्ञान। मज गोप्याचेंही गुप्त धन। परी तूं म्हणौनि आन। केवीं करूं ? ॥ १३२६॥
याकारणें गा पांडवा। आम्हीं आपुला हा गुह्य ठेवा। तुज दिधला कणवा। जाकळिलेपणें ॥ १३२७॥
जैसी भुलली वोरसें। माय बोले बाळा दोषें। प्रीति ही परी तैसें। न करूंचि हो ॥ १३२८॥
येथ आकाश आणि गाळिजे। अमृताही साली फेडिजे। कां दिव्याकरवीं करविजे। दिव्य जैसे ॥ १३२९॥
जयाचेनि अंगप्रकाशें। पाताळींचा परमाणु दिसे। तया सूर्याहि का जैसे। अंजन सूदलें ॥ १३३०॥
तैसें सर्वज्ञेंही मियां। सर्वही निर्धारूनियां। निकें होय तें धनंजया। सांगितलें तुज ॥ १३३१॥
आतां तूं ययावरी। निकें हें निर्धारीं। निर्धारूनि करीं। आवडे तैसें ॥ १३३२॥
यया देवाचिया बोला। अर्जुनु उगाचि ठेला। तेथ देवो म्हणती भला। अवंचकु होसी ॥ १३३३॥
वाढतयापुढें भुकेला। उपरोधें म्हणे मी धाला। तैं तोचि पीडे आपुला। आणि दोषुही तया ॥ १३३४॥
तैसा सर्वज्ञु श्रीगुरु। भेटलिया आत्मनिर्धारु। न पुसिजे जैं आभारु। धरूनियां ॥ १३३५॥
तैं आपणपेंचि वंचे। आणि पापही वंचनाचें। आपणयाचि साचें। चुकविलें तेणें ॥ १३३६॥
पैं उगेपणा तुझिया। हा अभिप्रावो कीं धनंजया। जें एकवेळ आवांकुनियां। सांगावें ज्ञान ॥ १३३७॥
तेथ पार्थु म्हणे दातारा। भलें जाणसी माझिया अंतरा। हें म्हणों तरी दुसरा। जाणता असे काई ? ॥ १३३८॥
येर ज्ञेय हें जी आघवें। तूं ज्ञाता एकचि स्वभावें। मा सूर्यु म्हणौनि वानावें। सूर्यातें काई ? ॥ १३३९॥
या बोला श्रीकृष्णें। म्हणितलें काय येणें। हेंचि थोडें गा वानणें। जें बुझतासि तूं ॥ १३४०॥

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥ ६४॥

तरी अवधान पघळ। करूनियाम् आणिक येक वेळ। वाक्य माझें निर्मळ। अवधारीं पां ॥ १३४१॥
हें वाच्य म्हणौनि बोलिजे। कां श्राव्य मग आयिकिजे। तैसें नव्हें परी तुझें। भाग्य बरवें ॥ १३४२॥
कूर्मीचिया पिलियां। दिठी पान्हा ये धनंजया। कां आकाश वाहे बापिया। घरींचें पाणी ॥ १३४३॥
जो व्यवहारु जेथ न घडे। तयाचें फळचि तेथ जोडे। काय दैवें न सांपडे। सानुकूळें ? ॥ १३४४॥
येऱ्हवीं द्वैताची वारी। सारूनि ऐक्याच्या परीवरीं। भोगिजे तें अवधारीं। रहस्य हें ॥ १३४५॥
आणि निरुपचारा प्रेमा। विषय होय जें प्रियोत्तमा। तें दुजें नव्हे कीं आत्मा। ऐसेंचि जाणावें ॥ १३४६॥
आरिसाचिया देखिलया। गोमटें कीजे धनंजया। तें तया नोहे आपणयां। लागीं जैसें ॥ १३४७॥
तैसें पार्था तुझेनि मिषें। मी बोलें आपणयाचि उद्देशें। माझ्या तुझ्या ठाईं असे । मीतूंपण गा ॥ १३४८॥
म्हणौनि जिव्हारींचें गुज। सांगतसे जीवासी तुज। हें अनन्यगतीचें मज। आथी व्यसन ॥ १३४९॥
पैम् जळा आपणपें देतां। लवण भुललें पंडुसुता। कीं आघवें तयाचें होतां। न लजेचि तें ॥ १३५०॥
तैसा तूं माझ्या ठाईं। राखों नेणसीचि कांहीं। तरी आतां तुज काई। गोप्य मी करूं ? ॥ १३५१॥
म्हणौनि आघवींचि गूढें। जें पाऊनि अति उघडें। तें गोप्य माझें चोखडें। वाक्य आइक ॥ १३५२॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।

मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥ ६५ ॥

तरी बाह्य आणि अंतरा। आपुलिया सर्व व्यापारा। मज व्यापकातें वीरा। विषयो करीं ॥ १३५३ ॥
आघवा आंगीं जैसा। वायु मिळोनि आहे आकाशा। तूं सर्व कर्मीं तैसा। मजसींचि आस ॥ १३५४ ॥
किंबहुना आपुलें मन। करीं माझें एकायतन। माझेनि श्रवणें कान। भरूनि घालीं ॥ १३५५ ॥
आत्मज्ञानें चोखडीं। संत जे माझीं रूपडीं। तेथ दृष्टि पडो आवडी। कामिनी जैसी ॥ १३५६ ॥
मीं सर्व वस्तीचें वसौटें। माझीं नामें जियें चोखटें। तियें जियावया वाटे। वाचेचिये लावीं ॥ १३५७ ॥
हातांचें करणें। कां पायांचें चालणें। तें होय मजकारणें। तैसें करीं ॥ १३५८ ॥
आपुला अथवा परावा। ठायीं उपकरसी पांडवा। तेणें यज्ञें होईं बरवा। याज्ञिकु माझा ॥ १३५९ ॥
हें एकैक शिकऊं काई। पैं सेवकें आपुल्या ठाई। उरूनि येर सर्वही। मी सेव्यचि करीं ॥ १३६० ॥
तेथ जाऊनिया भूतद्वेषु। सर्वत्र नमवैन मीचि एकु। ऐसेनि आश्रयो आत्यंतिकु। लाहसी तूं माझा ॥ १३६१ ॥
मग भरलेया जगाआंतु। जाऊनि तिजयाची मातु। होऊनि ठायील एकांतु। आम्हां तुम्हां ॥ १३६२ ॥
तेव्हां भलतिये आवस्थे। मी तूतें तूं मातें। भोगिसी ऐसें आइतें। वाढेल सुख ॥ १३६३ ॥
आणि तिजें आडळ करितें। निमालें अर्जुना जेथें। तें मीचि म्हणौनि तूं मातें। पावसी शेखीं ॥ १३६४ ॥
जैसी जळींची प्रतिभा। जळनाशीं बिंबा। येतां गाभागोभा। कांहीं आहे ? ॥ १३६५ ॥
पैं पवनु अंबरा। कां कल्लोळु सागरा। मिळतां आडवारा। कोणाचा गा ? ॥ १३६६ ॥
म्हणौनि तूं आणि आम्हीं। हें दिसताहे देहधर्मीं। मग ययाच्या विरामीं। मीचि होसी ॥ १३६७ ॥
यया बोलामाझारीं। होय नव्हे झणें करीं। येथ आन आथी तरी। तुझीचि आण ॥ १३६८ ॥
पैं तुझी आण वाहणें। हें आत्मलिंगातें शिवणें। प्रीतीची जाति लाजणें। आठवों नेदी ॥ १३६९ ॥
येऱ्हवीं वेद्यु निष्प्रपंचु। जेणें विश्वाभासु हा साचु। आज्ञेचा नटनाचु। काळातें जिणें ॥ १३७० ॥
तो देवो मी सत्यसंकल्पु। आणि जगाच्या हितीं बापु। मा आणेचा आक्षेपु। कां करावा ? ॥ १३७१ ॥
परी अर्जुना तुझेनि वेधें। मियां देवपणाचीं बिरुदें। सांडिलीं गा मी हे आधें । सगळेनि तुवां ॥ १३७२ ॥
पैं काजा आपुलिया। रावो आपुली आपणया। आण वाहे धनंजया। तैसें हें कीं ॥ १३७३ ॥
तेथ अर्जुनु म्हणे देवें। अचाट हें न बोलावें। जे आमचें काज नांवें। तुझेनि एके ॥ १३७४ ॥
यावरी सांगों बैससी । कां सांगतां भाषही देसी। या तुझिया विनोदासी। पारु आहे जी ? ॥ १३७५ ॥
कमळवना विकाशु। करी रवीचा एक अंशु । तेथ आघवाचि प्रकाशु। नित्य दे तो ॥ १३७६ ॥
पृथ्वी निवऊनि सागर। भरीजती येवढें थोर। वर्षे तेथ मिषांतर। चातकु कीं ॥ १३७७ ॥
म्हणौनि औदार्या तुझेया। मज निमित्त ना म्हणावया। प्राप्ति असे दानीराया। कृपानिधी ॥ १३७८ ॥
तंव देवो म्हणती राहें। या बोलाचा प्रस्तावो नोहे। पैं मातें पावसी उपायें । साचचि येणें ॥ १३७९ ॥
सैंधव सिंधू पडलिया। जो क्षणु धनंजया। तेणें विरेचि कीं उरावया। कारण कायी ? ॥ १३८० ॥
तैसें सर्वत्र मातें भजतां। सर्व मी होतां अहंता। निःशेष जाऊनि तत्वता। मीचि होसी ॥ १३८१ ॥
एवं माझिये प्राप्तीवरी। कर्मालागोनि अवधारीं। दाविली तुज उजरी। उपायांची ॥ १३८२ ॥
जे आधीं तंव पंडुसुता। सर्व कर्में मज अर्पितां। सर्वत्र प्रसन्नता। लाहिजे माझी ॥ १३८३ ॥
पाठीं माझ्या इये प्रसादीं। माझें ज्ञान जाय सिद्धी। तेणें मिसळिजे त्रिशुद्धी। स्वरूपीं माझ्या ॥ १३८४ ॥
मग पार्था तिये ठायीं। साध्य साधन होय नाहीं। किंबहुना तुज कांहीं। उरेचि ना ॥ १३८५ ॥
तरी सर्व कर्में आपलीं। तुवां सर्वदा मज अर्पिलीं। तेणें प्रसन्नता लाधली। आजि हे माझी ॥ १३८६ ॥

म्हणौनि येणें प्रसादबळें। नव्हे झुंजाचेनि आडळें। न ठाकेचि येकवेळे। भाळलों तुज ॥१३८७॥
जेणें सप्रपंच अज्ञान जाये। एकु मी गोचरु होये। तें उपपत्तीचेनि उपायें। गीतारूप हें ॥१३८८॥
मियां ज्ञान तुज आपुलें। नानापरी उपदेशिलें। येणें अज्ञानजात सांडी वियालें। धर्माधर्म जें ॥१३८९॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्ष्ययिष्यामि मा शुचः ॥६६॥

आशा जैसी दुःखातें। व्यालीं निंदा दुरितें। हे असो जैसें दैन्यातें। दुर्भगत्व ॥१३९०॥
तैसें स्वर्गनरकसूचक। अज्ञान व्यालें धर्मादिक। तें सांडूनि घालीं अशेख। ज्ञानें येणें ॥१३९१॥
हातीं घेऊन तो दोरु। सांडिजे जैसा सर्पाकारु। कां निद्रात्यागें घराचारु। स्वप्नींचा जैसा ॥१३९२॥
नाना सांडिलेनि कवळें। चंद्रींचें धुये पिंवळें। व्याधित्यागें कडुवाळें-। पण मुखाचें ॥१३९३॥
अगा दिवसा पाठीं देउनी। मृगजळ घापे त्यजुनी। कां काष्ठत्यागें वन्ही। त्यजिजे जैसा ॥१३९४॥
तैसें धर्माधर्माचें टवाळ। दावी अज्ञान जें कां मूळ। तें त्यजूनि त्यजीं सकळ। धर्मजात ॥१३९५॥
मग अज्ञान निमालिया। मीचि येकु असे अपैसया। सनिद्र स्वप्न गेलया। आपणपें जैसें ॥१३९६॥
तैसा मी एकवांचूनि कांहीं। मग भिन्नाभिन्न आन नाहीं। सोऽहंबोधें तयाच्या ठायीं। अनन्यु होय ॥१३९७॥
पैं आपुलेनि भेदेंविण। माझें जाणिजे जें एकपण। तयाचि नांव शरण। मज येएणें गा ॥१३९८॥
जैसें घटाचेनि नाशें। गगनीं गगन प्रवेशे। मज शरण येणें तैसें। ऐक्य करी ॥१३९९॥
सुवर्णमणि सोनया। ये कल्लोळु जैसा पाणिया। तैसा मज धनंजया। शरण ये तूं ॥१४००॥
वांचूनि सागराच्या पोटीं। वडवानळु शरण आला किरीटी। जाळूनि ठाके तया गोठी। वाळूनि दे पां ॥१४०१॥
मजही शरण रिघिजे। आणि जीवत्वेंचि असिजे। धिग् बोली यिया न लजे। प्रज्ञा केवीं ॥१४०२॥
अगा प्राकृताही राया। आंगीं पडे जें धनंजया। तें दासिरूंहि कीं तया। समान होय ॥१४०३॥
मा मी विश्वेश्वरु भेटे। आणि जीवग्रंथी न सुटे। हे बोल नको वोखटें। कानीं लाऊं ॥१४०४॥
म्हणौनि मी होऊनि मातें। सेवणें आहे आयितें। तें करीं हातां येतें। ज्ञानें येणें ॥१४०५॥
मग ताकौनियां काढिलें। लोणी मागौतें ताकीं घातलें। परी न घेपेचि कांहीं केलें। तेणें जेवीं ॥१४०६॥
तैसें अद्वयत्वें मज। शरण रिघालिया तुज। धर्माधर्म हे सहज। लागतील ना ॥१४०७॥
लोह उभें खाय माती। तें परीसाचिये संगतीं। सोनें जालया पुढती। न शिविजे मळें ॥१४०८॥
हें असो काष्ठापासोनि। मथूनि घेतलिया वन्ही। मग काष्ठेंही कोंडोनी। न ठके जैसा ॥१४०९॥
अर्जुना काय दिनकरु। देखत आहे अंधारु। कीं प्रबोधीं होय गोचरु। स्वप्नभ्रमु ॥१४१०॥
तैसें मजसी येकवटलेया। मी सर्वरूप वांचूनियां। आन कांहीं उरावया। कारण असे ? ॥१४११॥
म्हणौनि तयाचें कांहीं। चिंतीं न आपुल्या ठायीं। तुझें पापपुण्य पाहीं। मीचि होईन ॥१४१२॥
तेथ सर्वबंधलक्षणें। पापें उरावें दुजेपणें। तें माझ्या बोधीं वायाणें। होऊनि जाईल ॥१४१३॥
जळीं पडिलिया लवणा। सर्वही जळ होईल विचक्षणा। तुज मी अनन्यशरणा। होईन तैसा ॥१४१४॥
येतुलेनि आपैसया। सुटलाचि आहसी धनंजया। घेई मज प्रकाशोनियां। सोडवीन तूंतें ॥१४१५॥
याकारणें पुढती। हे आधी न वाहे चित्तीं। मज एकासि ये सुमती। जाणोनि शरण ॥१४१६॥
ऐसें सर्वरूपरूपसें। सर्वदृष्टिडोळसें। सर्वदेशनिवासें। बोलिलें श्रीकृष्णें ॥१४१७॥
मग सांवळा सकंकणु। बाहु पसरोनि दक्षिणु। आलिंगिला स्वशरणु। भक्तराजु तो ॥१४१८॥

न पवतां जयातें। काखे सूनि बुद्धीतें। बोंलणें मागौतें। वोसरलें ॥ १४१९ ॥
ऐसें जें कांहीं येक। बोला बुद्धीसिही अटक। तें द्यावया मिष। खेवाचें केलें ॥ १४२० ॥
हृदया हृदय येक जाले। ये हृदयींचें ते हृदयीं घातलें। द्वैत न मोडितां केलें । आपणाऐसें अर्जुना ॥ १४२१ ॥
दींपें दीप लाविला। तैसा परीष्वंगु तो जाला। द्वैत न मोडितां केला। आपणपें पार्थु ॥ १४२२ ॥
तेव्हां सुखाचा मग तया। पूरु आला जो धनंजया। तेथ वाडु तऱ्हीं बुडोनियां। ठेला देवो ॥ १४२३ ॥
सिंधु सिंधूतें पावों जाये। तें पावणें ठाके दुणा होये। वरी रिगे पुरवणिये। आकाशही ॥ १४२४ ॥
तैसें तयां दोघांचें मिळणें। दोघां नावरे जाणावें कवणें। किंबहुना श्रीनारायणें। विश्व कोंदलें ॥ १४२५ ॥
एवं वेदाचें मूळसूत्र। सर्वाधिकारैकपवित्र। श्रीकृष्णें गीताशास्त्र। प्रकट केलें ॥ १४२६ ॥
येथ गीता मूळ वेदां। ऐसें केवीं पां आलें बोधा। हें म्हणाल तरी प्रसिद्धा। उपपत्ति सांगों ॥ १४२७ ॥
तरी जयाच्या निःश्वासीं। जन्म झाले वेदराशी। तो सत्यप्रतिज्ञ पैजेसीं। बोलला स्वमुखें ॥ १४२८ ॥
म्हणौनि वेदां मूळभूत। गीता म्हणों हें होय उचित। आणिकही येकी येथ। उपपत्ति असे ॥ १४२९ ॥
जें न नशतु स्वरूपें। जयाचा विस्तारु जेथ लपे। तें तयांचें म्हणिपे। बीज जगीं ॥ १४३० ॥
तरी कांडत्रयात्मकु। शब्दराशी अशेखु। गीतेमाजीं असे रुखु। बीजीं जैसा ॥ १४३१ ॥
म्हणौनि वेदांचें बीज। श्रीगीता होय हें मज। गमे आणि सहज। दिसतही आहे ॥ १४३२ ॥
जे वेदांचे तिन्ही भाग। गीते उमटले असती चांग। भूषणरत्नीं सर्वांग। शोभलें जैसें ॥ १४३३ ॥
तियेचि कर्मादिकें तिन्ही। कांडें कोणकोणे स्थानीं। गीते आहाति तें नयनीं। दाखऊं आईक ॥ १४३४ ॥
तरी पहिला जो अध्यावो। तो शास्त्रप्रवृत्तिप्रस्तावो। द्वितीयीं साङ्ख्यसद्भावो। प्रकाशिला ॥ १४३५ ॥
मोक्षदानीं स्वतंत्र। ज्ञानप्रधान हें शास्त्र। येतुलालें दुजीं सूत्र। उभारिलें ॥ १४३६ ॥
मग अज्ञानें बांधलेयां। मोक्षपदीं बैसावया। साधनारंभु तो तृतीया-। ध्यायीं बोलिला ॥ । १४३७ ॥
जे देहाभिमान बंधें। सांडूनि काम्यनिषिद्धं। विहित परी अप्रमादें। अनुष्ठावें ॥ १४३८ ॥
ऐसेंनि सद्भावें कर्म करावें। हा तिजा अध्यावो जो देवें। निर्णय केला तें जाणावें। कर्मकांड येथ ॥ १४३९ ॥
आणि तेंचि नित्यादिक। अज्ञानाचें आवश्यक। आचरतां मोंचक। केवीं होय पां ॥ १४४० ॥
ऐसी अपेक्षा जालिया। बद्ध मुमुक्षुते आलिया। देवें ब्रह्मार्पणत्वें क्रिया। सांगितली ॥ १४४१ ॥
जे देहवाचामानसें। विहित निपजे जें जैसें। तें एक ईश्वरोद्देशें। कीजे म्हणितलें ॥ १४४२ ॥
हेंचि ईश्वरीं कर्मयोगें। भजनकथनाचें खागें। आदरिलें शेषभागें । चतुर्थाचेनी ॥ १४४३ ॥
तें विश्वरूप अकरावा। अध्यावो संपे जंव आघवा। तंव कर्मे ईशु भजावा। हें जें बोलिलें ॥ १४४४ ॥
तें अष्टाध्यायीं उघड। जाण येथें देवताकांड। शास्त्र सांगतसे आड। मोडूनि बोलें ॥ १४४५ ॥
आणि तेणेंचि ईशप्रसादें। श्रीगुरुसंप्रदायलब्धें। साच ज्ञान उद्बोधे। कोंवळें जें ॥ १४४६ ॥
तें अद्वेष्टादिप्रभृतिकीं। अथवा अमानित्वादिकीं। वाढविजे म्हणौनि लेखी। बारावा गणूं ॥ १४४७ ॥
तो बारावा अध्याय आदी। आणि पंधरावा अवधी। ज्ञानफळपाकसिद्धी। निरूपणासीं ॥ १४४८ ॥
म्हणौनि चहूंही इहीं। ऊर्ध्वमूळांतीं अध्यायीं। ज्ञानकांड ये ठायीं। निरूपिजे ॥ १४४९ ॥
एवं कांडत्रयनिरूपणी। श्रुतीचि हे कोडिसवाणी। गीतापद्यरत्नांचीं लेणीं। लेयिली आहे ॥ १४५० ॥
हें असो कांडत्रयात्मक। श्रुति मोक्षरूप फळ येक। बोभावे जें आवश्यक। ठाकावें म्हणौनि ॥ १४५१ ॥
तयाचेनि साधन ज्ञानेंसीं। वैर करी जो प्रतिदिवशीं। तो अज्ञानवर्ग षोडशीं। प्रतिपादिजे ॥ १४५२ ॥
तोचि शास्त्राचा बोळावा। घेवोनि वैरी जिणावा। हा निरोपु तो सतरावा। अध्याय येथ ॥ १४५३ ॥
ऐसा प्रथमालागोनि। सतरावा लाणी करूनी। आत्मनिश्वास विवरूनी। दाविला देवें ॥ १४५४ ॥

तया अर्थजातां अशेषां। केला तात्पर्याचा आवांका। तो हा अठरावा देखा। कलशाध्यायो ॥ १४५५ ॥
एवं सकळसंख्यासिद्धु। श्रीभागवद्गीता प्रबंधु। हा औदार्यें आगळा वेदु। मूर्तु जाण ॥ १४५६ ॥
वेदु संपन्नु होय ठाई। परी कृपणु ऐसा आनु नाहीं। जे कानीं लागला तिहीं। वर्णांच्याचि ॥ १४५७ ॥
येरां भवव्याथा ठेलियां। स्त्रीशूद्रादिकां प्राणियां। अनवसरू मांडूनियां। राहिला आहे ॥ १४५८ ॥
तरी मज पाहतां तें मागील उणें। फेडावया गीतापणें। वेदु वेठला भलतेणें। सेव्य होआवया ॥ १४५९ ॥
ना हे अर्थु रिगोनि मनीं। श्रवणें लागोनि कानीं। जपमिषें वदनीं। वसोनियां ॥ १४६० ॥
ये गीतेचा पाठु जो जाणे। तयाचेनि सांगातीपणें। गीता लिहोनि वाहाणें। पुस्तकमिषें ॥ १४६१ ॥
ऐसैसा मिसकटां। संसाराचा चोहटा। गवादी घालीत चोखटा। मोक्षसुखाची ॥ १४६२ ॥
परी आकाशीं वसावया। पृथ्वीवरी बैसावया। रविदीप्ति राहाटावया। आवारु नभ ॥ १४६३ ॥
तेवीं उत्तम अधम ऐसें। सेवितां कवणातेंही न पुसे। कैवल्यदानें सरिसें। निववीत जगा ॥ १४६४ ॥
यालागीं मागिली कुटी। भ्याला वेदु गीतेच्या पोटीं। रिगाला आतां गोमटी। कीर्ति पातला ॥ १४६५ ॥
म्हणौनि वेदाची सुसेव्यता। ते हे मूर्त जाण श्रीगीता। श्रीकृष्णें पंडुसुता। उपदेशिली ॥ १४६६ ॥
परी वत्साचेनि वोरसें। दुभतें होय घरोद्देशें। जालें पांडवाचेनि मिषें। जगदुद्धरण ॥ १४६७ ॥
चातकाचियें कणवें। मेघु पाणियेसिं धांवे। तेथ चराचर आघवें। निवालें जेवीं ॥ १४६८ ॥
कां अनन्यगतिकमळा-। लागीं सूर्य ये वेळोवेळां। कीं सुखिया होईजे डोळां। त्रिभुवनींचा ॥ १४६९ ॥
तैसें अर्जुनाचेनि व्याजें। गीता प्रकाशूनि श्रीराजें। संसारायेवढें थोर ओझें। फेडिलें जगाचें ॥ १४७० ॥
सर्वशास्त्ररत्नदीप्ती। उजळिता हा त्रिजगतीं। सूर्यु नव्हें लक्ष्मीपती। वक्त्राकाशींचा ॥ १४७१ ॥
बाप कुळ तें पवित्र। जेथिंचा पार्थु या ज्ञाना पात्र। जेणें गीता केलें शास्त्र। आवारु जगा ॥ १४७२ ॥
हें असो मग तेणें। सद्गुरु श्रीकृष्णें। पार्थाचें मिसळणें। आणिलें द्वैता ॥ १४७३ ॥
पाठीं म्हणतसे पांडवा। शास्त्र हें मानलें कीं जीवा। तेथ येरु म्हणे देवा। आपुलिया कृपा ॥ १४७४ ॥
तरी निधान जोडावया। भाग्य घडे गा धनंजया। परी जोडिलें भोगावया । विपायें होय ॥ १४७५ ॥
पैं क्षीरसागरायेवढें। अविरजी दुधाचें भांडें। सुरां असुरां केवढें। मथितां जालें ॥ १४७६ ॥
तें सायासही फळा आलें। जें अमृतही डोळां देखिलें। परी वरिचिली चुकलें। जतनेतें ॥ १४७७ ॥
तेथ अमरत्वा वोगरिलें। तें मरणाचिलागीं जालें। भोगों नेणतां जोडलें। ऐसें आहे ॥ १४७८ ॥
नहुषु स्वर्गाधिपति जाहला। परी राहाटीं भांबावला। तो भुजंगत्व पावला। नेणसी कायी ? ॥ १४७९ ॥
म्हणौनि बहुत पुण्य तुवां। केलें तेणें धनंजया। आजि शास्त्रराजा इया। जालासि विषयो ॥ १४८० ॥
तरी ययाचि शास्त्राचेनि। संप्रदायें पांघुरौनि। शास्त्रार्थ हा निकेनि। अनुष्ठीं हो ॥ १४८१ ॥
येऱ्हवीं अमृतमंथना-। सारिखें होईल अर्जुना। जरी रिघसी अनुष्ठाना। संप्रदायेंवीण ॥ १४८२ ॥
गाय धड जोडे गोमटी। ते तैंचि पिवों ये किरीटी। जैं जाणिजे हातवटी। सांजवणीची ॥ १४८३ ॥
तैसा श्रीगुरु प्रसन्न होये। शिष्य विद्याही कीर लाहे। परी ते फळे संप्रदायें। उपासिलिया ॥ १४८४ ॥
म्हणौनि शास्त्रीं जो इये। उचितु संप्रदायो आहे। तो ऐक आतां बहुवें। आदरेंसीं ॥ १४८५ ॥

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ॥ ६७ ॥

तरी तुवां हें जें पार्था। गीताशास्त्र लाधलें आस्था। तें तपोहीना सर्वथा। सांगावें ना हो ॥ ।१४८६ ॥

अथवा तापसुही जाला । परी गुरूभक्तीं जो ढिला। तो वेदीं अंत्यजु वाळिला। तैसा वाळीं ॥१४८७॥
नातरी पुरोडाशु जैसा। न घापे वृद्ध तरी वायसा। गीता नेदी तैसी तापसा। गुरुभक्तिहीना ॥१४८८॥
कां तपही जोडे देहीं। भजे गुरुदेवांच्या ठायीं। परी आकर्णनीं नाहीं। चाड जरी ॥१४८९॥
तरी मागील दोन्हीं आंगीं। उत्तम होय कीर जगीं। परी या श्रवणालागीं। योग्यु नोहे ॥१४९०॥
मुक्ताफळ भलतैसें। हो परी मुख नसे। तंव गुण प्रवेशे। तेथ कायी ? ॥१४९१॥
सागरु गंभीरु होये। हें कोण ना म्हणत आहे। परी वृष्टि वायां जाये। जाली तेथ ॥१४९२॥
धालिया दिव्यान्न सुवावें। मग जें वायां धाडावें। तें आर्तीं कां न करावें। उदारपण ॥१४९३॥
म्हणौनि योग्य भलतैसें। होतु परी चाड नसे। तरी झणें वानिवसें। देसी हें तयां ॥१४९४॥
रूपाचा सुजाणु डोळा। वोढवूं ये कायि परिमळा ?। जेथ जें माने ते फळा। तेथचि ते गा ॥१४९५॥
म्हणौनि तपी भक्ति। पाहावे ते सुभद्रापती। परी शास्त्रश्रवणीं अनासक्ती। वाळावेचि ते ॥१४९६॥
नातरी तपभक्ति। होऊनि श्रवणीं आर्ति। आथी ऐसीही आयती। देखसी जरी ॥१४९७॥
तरी गीताशास्त्रनिर्मिता। जो मी सकळलोकशास्ता। तया मातें सामान्यता। बोलेल जो ॥१४९८॥
माझ्या सज्जनेंसिं मातें। पैशुन्याचेनि हातें। येक आहाती तयांतें। योग्य न म्हण ॥१४९९॥
तयांची येर आघवी। सामग्री ऐसी जाणावी। दीपेंवीण ठाणदिवी। रात्रीची जैसी ॥१५००॥
अंग गोरें आणि तरुणें। वरी लेईलें आहे लेणें। परी येकलेनि प्राणें। सांडिलें जेवीं ॥१५०१॥
सोनयाचें सुंदर। निर्वाळिलें होय घर। परी सर्पांगना द्वार। रुंधलें आहे ॥१५०२॥
निपजे दिव्यान्न चोखट। परी माजीं काळकूट। असो मैत्री कपट-। गर्भिणी जैसी ॥१५०३॥
तैसी तपभक्तिमेधा। तयाची जाण प्रबुद्धा। जो माझयांची कां निंदा। माझीचि करी ॥१५०४॥
याकारणें धनंजया। तो भक्तु मेधावीं तपिया। तरी नको बापा इया। शास्त्रा आतळों देवों ॥१५०५॥
काय बहु बोलों निंदका। योग्य स्रष्टयाहीसारिखा। गीता हे कवतिका-। लागींही नेदीं ॥१५०६॥
म्हणौनि तपाचा धनुर्धरा। तळीं दाटोनि गाडोरा। वरीं गुरुभक्तीचा पुरा। प्रासादु जो जाला ॥१५०७॥
आणि श्रवणेच्छेचा पुढां। दारवंटा सदा उघडा। वरी कलशु चोखडा। अनिंदारत्नांचा ॥१५०८॥

य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥६८॥

ऐशा भक्तालयीं चोखटीं। गीतारत्नेश्वरु हा प्रतिष्ठीं। मग माझिया संवसाटी। तुकसी जगीं ॥१५०९॥
कां जे एकाक्षरपणेंसीं। त्रिमात्रकेचिये कुशीं। प्रणवु होतां गर्भवासीं। सांकडला ॥१५१०॥
तो गीतेचिया बाहाळीं। वेदबीज गेलें पाहाळीं। कीं गायत्री फुलींफळीं। श्लोकांच्या आली ॥१५११॥
ते हे मंत्ररहय गीता। मेळवी जो माझिया भक्ता। अनन्यजीवना माता। बाळका जैसी ॥१५१२॥
तैसी भक्तां गीतेसीं। भेटी करी जो आदरेंसीं। तो देहापाठीं मजसीं। येकचि होय ॥१५१३॥

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥६९॥

आणि देहाचेंही लेणें। लेऊनि वेगळेपणें। असे तंव जीवेंप्राणें। तोचि पढिये ॥१५१४॥

ज्ञानियां कर्मठां तापसां। यया खुणेचिया माणुसां-। माजीं तो येकु गा जैसा। पढिये मज ॥१५१५॥
तैसा भूतळीं आघवा। आन न देखे पांडवा। जो गीता सांगें मेळावा। भक्तजनांचा ॥१५१६॥
मज ईश्वराचेनि लोभें। हे गीता पढतां अक्षोभें। जो मंडन होय सभे। संतांचिये ॥१५१७॥
नेत्रपल्लवीं रोमांचितु। मंदानिळें कांपवितु। आमोदजळें वोलवितु। फुलांचे डोळें ॥१५१८॥
कोकिळा कलरवाचेनि मिषें। सद्गद बोलवीत जैसें। वसंत का प्रवेशे। मद्भक्त आरामीं ॥१५१९॥
कां जन्माचें फळ चकोरां। होत जैं चंद्र ये अंबरा। नाना नवघन मयूरां। वो देत पावे ॥१५२०॥
तैसा सज्जनांच्या मेळापीं। गीतापद्यरत्नीं उमपीं। वर्षे जो माझ्या रूपीं। हेतु ठेऊनि ॥१५२१॥
मग तयाचेनि पाडें। पढियंतें मज फुडें। नाहींचि गा मागेंपुढें। न्याहाळितां ॥१५२२॥
अर्जुना हा ठायवरी। मी तयातें सूयें जिव्हारीं। जो गीतार्थाचें करी। परगुणें संतां ॥१५२३॥

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥७०॥

पैं माझिया तुझिया मिळणीं। वाढिनली जे हे कहाणी। मोक्षधर्म का जिणीं। आलासे जेथें ॥१५२४॥
तो हा सकळार्थप्रबोधु। आम्हां दोघांचा संवादु। न करितां पदभेदु। पाठेंचि जो पढे ॥१५२५॥
तेणें ज्ञानानळीं प्रदीप्तीं। मूळ अविद्येचिया आहुती। तोषविला होय सुमती। परमात्मा मी ॥१५२६॥
घेऊनि गीतार्थ उगाणा। ज्ञानिये जें विचक्षणा। ठाकती तें गाणावाणा। गीतेचा तो लाहे ॥१५२७॥
गीता पाठकासि असे । फळ अर्थज्ञाचि सरिसें। गीता माउलियेसि नसे। जाणें तान्हें ॥१५२८॥

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः ।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ॥७१॥

आणि सर्वमार्गीं निंदा। सांडूनि आस्था पैं शुद्धा। गीताश्रवणीं श्रद्धा। उभारी जो ॥१५२९॥
तयाच्या श्रवणपुटीं। गीतेचीं अक्षरें जंव पैठीं। होतीना तंव उठाउठीं। पळेचि पाप ॥१५३०॥
अटवियेमाजीं जैसा। वन्हि रिघतां सहसा। लंघिती का दिशा। वनौकें तियें ॥१५३१॥
कां उदयाचळकुळीं। झळकतां अंशुमाळी। तिमिरें अंतराळीं। हारपती ॥१५३२॥
तैसा कानाच्या महाद्वारीं। गीता गजर जेथ करी। तेथ सृष्टीचिये आदिवरी। जायचि पाप ॥१५३३॥
ऐसी जन्मवेली धुवट। होय पुण्यरूप चोखट। याहीवरी अचाट। लाहे फळ ॥१५३४॥
जें इये गीतेचीं अक्षरें। जेतुलीं कां कर्णद्वारें। रिघती तेतुले होती पुरे। अश्वमेध कीं ॥१५३५॥
म्हणौनि श्रवणें पापें जाती। आणि धर्म धरी उन्नती। तेणें स्वर्गराज संपत्ती। लाहेचि शेखीं ॥१५३६॥
तो पैं मज यावयालागीं। पहिलें पेणें करी स्वर्गीं। मग आवडे तंव भोगी। पाठीं मजचि मिळे ॥१५३७॥
ऐसी गीता धनंजया। ऐकतया आणि पढतया। फळे महानंदें मियां। बहु काय बोलों ॥१५३८॥
याकारणें हें असो। परी जयालागीं शास्त्रातिसो। केला तें तंव तुज पुसों। काज तुझें ॥१५३९॥

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।

कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय ॥ ७२॥

तरी सांग पां पांडवा। हा शास्त्रसिद्धांतु आघवा। तुज एकचित्तें फावा। गेला आहे ? ॥ १५४०॥
आम्हीं जैसें जया रीतीं। उगाणिलें कानांच्या हातीं। येरीं तैसेंचि तुझ्या चित्तीं । पेठें केलें कीं ? ॥ १५४१॥
अथवा माझारीं। गेलें सांडीविखुरी। किंवा उपेक्षेवरी। वाळूनि सांडिलें ॥ १५४२॥
जैसें आम्हीं सांगितलें। तैसेंचि हृदयीं फावलें। तरी सांग पां वहिलें। पुसेन तें मी ॥ १५४३॥
तरी स्वाज्ञानजनितें। मागिलें मोहें तूतें। भुलविलें तो येथें। असे कीं नाहीं ? ॥ १५४४॥
हें बहु पुसों काई। सांगें तूं आपल्या ठायीं। कर्माकर्म कांहीं। देखतासी ? ॥ १५४५॥
पार्थु स्वानंदैकरसें। विरेल ऐसा भेददशे। आणिला येणें मिषें। प्रश्नाचेनि ॥ १५४६॥
पूर्णब्रह्म जाला पार्थु। तरी पुढील साधावया कार्यार्थु। मर्यादा श्रीकृष्णनाथु। उल्लंघों नेदी ॥ १५४७॥
येऱ्हवीं आपुलें करणें। सर्वज्ञ काय तो नेणें ?। परी केलें पुसणें। याचि लागीं ॥ १५४८॥
एवं करोनियां प्रश्न। नसतेंचि अर्जुनपण। आणूनियां जालें पूर्णपण। तें बोलवी स्वयें ॥ १५४९॥
मग क्षीराब्धीतें सांडितु। गगनीं पुंजु मंडितु। निवडे जैसा न निवडितु। पूर्णचंद्र ॥ १५५०॥
तैसा ब्रह्म मी हें विसरे। तेथ जगचि ब्रह्मत्वें भरे। हेंही सांडी तरी विरे। ब्रह्मपणही ॥ १५५१॥
ऐसा मोडतु मांडतु ब्रह्में। तो दुःखें देहाचिये सीमे। मी अर्जुन येणें नामें। उभा ठेला ॥ १५५२॥
मग कांपतां करतळीं। दडपूनि रोमावळी। पुलिका स्वेदजळीं। जिरऊनियां ॥ १५५३॥
प्राणक्षोभें डोलतया। आंगा आंगचि टेंकया। सूनि स्तंभु चाळया। भुलौनियां ॥ १५५४॥
नेत्रयुगुळाचेनि वोतें। आनंदामृताचें भरितें। वोसंडत तें मागुतें। काढूनियां ॥ १५५५॥
विविधा औत्सुक्यांची दाटी। चीप दाटत होती कंठीं। ते करूनियां पैठी। हृदयामाजीं ॥ १५५६॥
वाचेचें वितुळणें। सांवरूनि प्राणें। अक्रमाचें श्वसणें। ठेऊनि ठायीं ॥ १५५७॥

अर्जुन उवाच ।
नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ॥ ७३॥

मग अर्जुन म्हणे काय देवो। । पुसताति आवडे मोहो। तरी तो सकुटुंब गेला जी ठावो। घेऊनि आपला ॥ १५५८॥
पासीं येऊनि दिनकरें। डोळ्यातें अंधारें। पुसिजे हें कायि सरे। कोणे गांवीं ? ॥ १५५९॥
तैसा तूं श्रीकृष्णराया। आमुचिया डोळयां। गोचर हेंचि कायिसया। न पुरे तंव ॥ १५६०॥
वरी लोभें मायेपासूनी। तें सांगसी तोंड भरूनी। जें कायिसेनिही करूनी। जाणूं नये ॥ १५६१॥
आतां मोह असे कीं नाहीं। हें ऐसें जी पुससी काई। कृतकृत्य जाहलों पाहीं। तुझेपणें ॥ १५६२॥
गुंतलों होतों अर्जुनगुणें। तो मुक्त जालों तुझेपणें। आतां पुसणें सांगणें। दोन्ही नाहीं ॥ १५६३॥
मी तुझेनि प्रसादें। लाधलेनि आत्मबोधें। मोहाचे तया कांदे। नेदीच उरों ॥ १५६४॥
आतां करणें कां न करणें। हें जेणें उठी दुजेपणें। तें तूं वांचूनि नेणें। सर्वत्र गा ॥ १५६५॥
ये विषयीं माझ्या ठायीं। संदेहाचे नुरेचि कांहीं। त्रिशुद्धि कर्म जेथ नाहीं। तें मी जालों ॥ १५६६॥
तुझेनि मज मी पावोनी। कर्तव्य गेलें निपटूनी। परी आज्ञा तुझी वांचोनि। आन नाहीं प्रभो ॥ १५६७॥
कां जें दृश्य दृश्यातें नाशी। जें दुजें द्वैतातें ग्रासी। जें एक परी सर्वदेशीं। वसवी सदा ॥ १५६८॥

जयाचेनि संबंधें बंधु फिटे। जयाचिया आशा आस तुटे। जें भेटलया सर्व भेटे। आपणपांचि ॥१५६९॥
तें तूं गुरुलिंग जी माझें। जें येकलेपणींचें विरजें। जयालागीं वोलांडिजे। अद्वैतबोधु ॥१५७०॥
आपणचि होऊनि ब्रह्म। सारिजे कृत्याकृत्यांचें काम। मग कीजे का निःसीम। सेवा जयाची ॥१५७१॥
गंगा सिंधू सेवूं गेली। पावतांचि समुद्र जाली। तेवीं भक्तां सेल दिधली। निजपदाची ॥१५७२॥
तो तूं माझा जी निरुपचारु। श्रीकृष्णा सेव्य सद्गुरु। मा ब्रह्मतेचा उपकारु। हाचि मानीं ॥१५७३॥
जें मज तुम्हां आड। होतें भेदाचें कवाड। तें फेडोनि केलें गोड। सेवासुख ॥१५७४॥
तरी आतां तुझी आज्ञा। सकळ देवाधिदेवराज्ञा। करीन देईं अनुज्ञा। भलतियेविषयीं ॥१५७५॥
यया अर्जुनाचिया बोला। देवो नाचे सुखें भुलला। म्हणे विश्वफळा जाला। फळ हा मज ॥१५७६॥
उणेनि उमचला सुधाकरु। देखुनी आपला कुमरु। मर्यादा क्षीरसागरु। विसरेचिना ? ॥१५७७॥
ऐसे संवादाचिया बहुलां। लग्न दोघांचियां आंतुला। लागलें देखोनि जाला। निर्भरु संजयो ॥१५७८॥
तेणें म्हणतसे संजयो । बाप कृपानिधी रावो । तो आपुला मनोभावो । अर्जुनेंसी केला ॥१५७९ ॥
तेणें उचंबळलेपणें। संजय धृतराष्ट्रातें म्हणे। जी कैसे बादरायणें। रक्षिलों दोघे ? ॥१५८०॥
आजि तुमतें अवधारा। नाहीं चर्मचक्षूही संसारा। कीं ज्ञानदृष्टिव्यवहारा आणिलेती ॥१५८१॥
आणि रथींचिये राहाटी। घेई जो घोडेयासाठीं। तया आम्हां या गोष्टी। गोचरा होती ॥१५८२॥
वरी जुंझाचें निर्वाण। मांडलें असे दारुण। दोहीं हारीं आपण। हारपिजे जैसें ॥१५८३॥
येवढा जिये सांकडां। कैसा अनुग्रहो पैं गाढा। जे ब्रह्मानंदु उघडा। भोगवीतसे ॥१५८४॥
ऐसें संजय बोलिला। परी न द्रवे येरु उगला। चंद्रकिरणीं शिवतला। पाषाणु जैसा ॥१५८५॥
हे देखोनि तयाची दशा। मग करीचिना सरिसा। परी सुखें जाला पिसा। बोलतसे ॥१५८६॥
भुलविला हर्षवेगें। म्हणौनि धृतराष्ट्रा सांगे। येऱ्हवीं नव्हे तयाजोगें। हें कीर जाणें ॥१५८७॥

सञ्जय उवाच ।
इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥७४॥

मग म्हणे पैं कुरुराजा। ऐसा बंधुपुत्र तो तुझा। बोलिला तें अधोक्षजा। गोड जालें ॥१५८८॥
अगा पूर्वापर सागर। ययां नामसीचि सिनार। येर आघवें तें नीर। एक जैसें ॥१५८९॥
तैसा श्रीकृष्ण पार्थ ऐसें। हें आंगाचिपासीं दिसे। मग संवादीं जी नसे। कांहींचि भेदु ॥१५९० ॥
पैं दर्पणाहूनि चोखें। दोन्ही होती सन्मुखें। तेथ येरी येर देखे। आपणपें जैसें ॥१५९१॥
तैसा देवेसीं पंडुसुतु। आपणपें देवीं देखतु। पांडवेंसीं देखे अनंतु। आपणपें पार्थीं ॥१५९२॥
देव देवो भक्तालागीं। जिये विवरूनि देखे आंगीं। येरु तियेचेही भागीं। दोन्ही देखे ॥१५९३॥
आणिक कांहींच नाहीं। म्हणौनि करिती काई। दोघे येकपणें पाहीं। नांदताती ॥१५९४॥
आतां भेदु जरी मोडे। तरी प्रश्नोत्तर कां घडे ?। ना भेदुचि तरी जोडे। संवादसुख कां ? ॥१५९५॥
ऐसें बोलतां दुजेपणें। संवादीं द्वैत गिळणें। तें ऐकिलें बोलणें। दोघांचें मियां ॥१५९६॥
उटूनि दोन्ही आरिसे। वोडविलीया सरिसे। कोण कोणा पाहातसे। कल्पावें पां ? ॥१५९७॥
कां दीपासन्मुखु। ठेविलया दीपकु। कोण कोणा अर्थिकु। कोण जाणें ॥१५९८॥
नाना अर्कापुढें अर्कु। उदयलिया आणिकु। कोण म्हणे प्रकाशकु। प्रकाश्य कवण ? ॥१५९९॥

हें निर्धारूं जातां फुडें। निर्धारासि ठक पडे। ते दोघे जाले एवढे। संवादें सरिसे ॥ १६००॥
जीं मिळतां दोन्ही उदकें । माजी लवण वारूं ठाके। कीं तयासींही निमिखें। तेंचि होय ॥ १६०१॥
तैसे श्रीकृष्ण अर्जुन दोन्ही। संवादले तें मनीं। धरितां मजही वानी। तेंचि होतसे ॥ १६०२॥
ऐसें म्हणे ना मोटकें । तंव हिरोनि सात्विकें। आठव नेला नेणों कें। संजयपणाचा ॥ १६०३॥
रोमांच जंव फरके। तंव तंव आंग सुरके। स्तंभ स्वेदांतें जिंके। एकला कंपु ॥ १६०४॥
अद्वयानंदस्पर्शें। दिठी रसमय जाली असे । ते अश्रु नव्हती जैसें। द्रवत्वचि ॥ १६०५॥
नेणों काय न माय पोटीं। नेणों काय गुंफे कंठीं। वागर्था पडत मिठी। उससांचिया ॥ १६०६॥
किंबहुना सात्विकां आठां। चाचरु मांडतां उमेठा। संजयो जालासे चोहटां। संवादसुखाचा ॥ १६०७॥
तया सुखाची ऐसी जाती। जे आपणचि धरी शांती। मग पुढती देहस्मृती। लाधली तेणें ॥ १६०८॥

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम् ।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ॥ ७५॥

तेव्हां बैसतेनि आनंदें। म्हणे जी जें उपनिषदें। नेणती तें व्यासप्रसादें। ऐकिलें मियां ॥ १६०९॥
ऐकतांचि ते गोठी। ब्रह्मत्वाची पडिली मिठी। मीतूंपणेंसीं दृष्टी। विरोनि गेली ॥ १६१०॥
हे आघवेचि का योग। जया ठाया येती मार्ग। तयाचें वाक्य सवंग। केलें मज व्यासें ॥ १६११॥
अहो अर्जुनाचेनि मिषें। आपणपेंचि दुजें ऐसें। नटोनि आपणया उद्देशें। बोलिलें जें देव ॥ १६१२॥
तेथ कीं माझें श्रोत्र। पाटाचें जालें जी पात्र। काय वानूं स्वतंत्र। सामर्थ्य श्रीगुरुचें ॥ १६१३॥

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् ।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥ ७६॥

राया हें बोलतां विस्मित होये। तेणेंचि मोडावला ठाये। रत्नीं कीं रत्नकिळा ये। झांकोळित जैसी ॥ १६१४॥
हिमवंतींचीं सरोवरें। चंद्रोदयीं होती काश्मीरें। मग सूर्यागमीं माघारें। द्रवत्व ये ॥ १६१५॥
तैसा शरीराचिया स्मृती। तो संवादु संजय चित्तीं। धरी आणि पुढती। तेंचि होय ॥ १६१६॥

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ।
विस्मयो मे महान् राजन्हृष्यामि च पुनः पुनः ॥ ७७॥

मग उठोनि म्हणे नृपा। श्रीहरीचिया विश्वरूपा। देखिलया उगा कां पां। असों लाहसी ? ॥ १६१७॥
न देखणेनि जें दिसे। नाहींपणेंचि जें असे । विसरें आठवे तें कैसें। चुकऊं आतां ॥ १६१८॥
देखोनि चमत्कारु। कीजे तो नाहीं पैसारु। मजहीसकट महापूरु। नेत आहे ॥ १६१९॥
ऐसा श्रीकृष्णार्जुन-। संवाद संगमीं स्नान। करूनि देतसे तिळदान। अहंतेचें ॥ १६२०॥
तेथ असंवरें आनंदें। अलौकिकही कांहीं स्फुंदे। श्रीकृष्ण म्हणे सद्गदें। वेळोवेळां ॥ १६२१॥
या अवस्थांची कांहीं। कौरवांतें परी नाहीं। म्हणौनि रायें तें कांहीं। कल्पावें जंव ॥ १६२२॥
तंव जाला सुखलाभु। आपणया करूनि स्वयंभु। बुझाविला अवष्टंभु। संजयें तेणें ॥ १६२३॥

तेथ कोणी येकी अवसरी। होआवी ते करूनि दुरी। रावो म्हणे संजया परी। कैसी तुझी गा ? ॥१६२४॥
तेणें तूंतें येथें व्यासें। बैसविलें कासया उद्देशें। अप्रसंगामाजीं ऐसें। बोलसी काई ? ॥१६२५॥
रानींचें राउळा नेलिया। दाही दिशा मानी सुनिया। कां रात्री होय पाहलया। निशाचरां ॥१६२६॥
जो जेथिंचें गौरव नेणें। तयासि तें भिंगुळवाणें। म्हणौनि अप्रसंगु तेणें। म्हणावा कीं तो ॥१६२७॥
मग म्हणे सांगें प्रस्तुत। उदयलेंसे जें उत्कळित। तें कोणासि बा रे जैत। देईल शेखीं ? ॥१६२८॥
येऱ्हवीं विशेषें बहुतेक। आमुचें ऐसें मानसिक। जे दुर्योधनाचे अधिक। प्रताप सदा ॥१६२९॥
आणि येरांचेनि पाडें। दळही याचें देव्हडें। म्हणौनि जैत फुडें। आणील ना तें ? ॥१६३०॥
आम्हां तंव गमे ऐसें। मा तुझें ज्योतिष कैसें। तें नेणों संजया असे । तैसें सांग पां ॥१६३१॥

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥७८॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्षसंन्यासयोगो नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥१८अ ॥

यया बोला संजयो म्हणे। जी येरयेरांचें मी नेणें। परी आयुष्य तेथें जिणें। हें फुडें कीं गा ॥१६३२॥
चंद्रु तेथें चंद्रिका। शंभु तेथें अंबिका। संत तेथें विवेका। असणें कीं जी ॥१६३३॥
रावो तेथें कटक। सौजन्य तेथें सोयरीक। वन्हि तेथें दाहक। सामर्थ्य कीं ॥१६३४॥
दया तेथें धर्मु। धर्मु तेथें सुखागमु। सुखीं पुरुषोत्तमु। असे जैसा ॥१६३५॥
वसंत तेथें वनें। वन तेथें सुमनें। सुमनीं पालिंगनें। सारंगांचीं ॥१६३६॥
गुरु तेथ ज्ञान। ज्ञानीं आत्मदर्शन। दर्शनीं समाधान। आथी जैसें ॥१६३७॥
भाग्य तेथ विलासु। सुख तेथ उल्लासु। हें असो तेथ प्रकाशु। सूर्य जेथें ॥१६३८॥
तैसे सकल पुरुषार्थ। जेणें स्वामी कां सनाथ। तो श्रीकृष्ण रावो जेथ। तेथ लक्ष्मी ॥१६३९॥
आणि आपुलेनि कांतेंसीं। ते जगदंबा जयापासीं। अणिमादिकीं काय दासी। नव्हती तयातें ? ॥१६४०॥
कृष्ण विजयस्वरूप निजांगें। तो राहिला असे जेणें भागें। तैं जयो लागवेगें। तेथेंचि आहे ॥१६४१॥
विजयो नामें अर्जुन विख्यातु। विजयस्वरूप श्रीकृष्णनाथु। श्रियेसीं विजय निश्चितु। तेथेंचि असे ॥१६४२॥
तयाचिये देशींच्या झाडीं। कल्पतरूतें होडी। न जिणावें कां येवढीं। मायबापें असतां ? ॥१६४३॥
ते पाषाणही आघवें। चिंतारत्नें कां नोहावे ?। तिये भूमिके कां न यावें। सुवर्णत्व ? ॥१६४४॥
तयाचिया गांवींचिया। नदी अमृतें वाहावीया। नवल कायि राया। विचारीं पां ॥१६४५॥
तयाचे बिसाट शब्द। सुखें म्हणों येती वेद। सदेह सच्चिदानंद। कां न व्हावे ते ? ॥१६४६॥
पैं स्वर्गापवर्ग दोन्ही। इयें पदें जया अधीनीं। तो श्रीकृष्ण बाप जननी। कमळा जया ॥१६४७॥
म्हणौनि जिया बाहीं उभा। तो लक्ष्मीयेचा वल्लभा। तेथें सर्वसिद्धी स्वयंभा। येर मी नेणें ॥१६४८॥
आणि समुद्राचा मेघु। उपयोगें तयाहूनि चांगु। तैसा पार्थीं आजि लागु। आहे तये ॥१६४९॥
कनकत्वदीक्षागुरू। लोहा परिसु होय कीरू। परी जगा पोसिता व्यवहारु। तेंचि जाणें ॥१६५०॥
येथ गुरुत्वा येतसे उणें। ऐसें झणें कोण्ही म्हणे। वन्हि प्रकाश दीपपणें। प्रकाशी आपुला ॥१६५१॥
तैसा देवाचिया शक्ती। पार्थु देवासीचि बहुती। परी माने इये स्तुती। गौरव असे ॥१६५२॥

आणि पुत्रें मी सर्व गुणीं। जिणावा हे बापा शिराणी। तरी ते शारङ्गपाणी। फळा आली ॥१६५३॥
किंबहुना ऐसा नृपा। पार्थु जालासे कृष्णकृपा। तो जयाकडे साक्षेपा। रीति आहे ॥१६५४॥
तोचि गा विजयासि ठावो। येथ तुज कोण संदेहो ?। तेथ न ये तरी वावो। विजयोचि होय ॥१६५५॥
म्हणौनि जेथ श्री तेथें श्रीमंतु। जेथ तो पंडूचा सुतु। तेथ विजय समस्तु। अभ्युदयो तेथ ॥१६५६॥
जरी व्यासाचेनि साचें। धिरे मन तुमचें। तरी या बोलाचें। ध्रुवचि माना ॥१६५७॥
जेथ तो श्रीवल्लभु। जेथ भक्तकदंबु। तेथ सुख आणि लाभु। मंगळाचा ॥१६५८॥
या बोला आन होये। तरी व्यासाचा अंकु न वाहे। ऐसें गाजोनि बाहें। उभिली तेणें ॥१६५९॥
एवं भारताचा आवांका। आणूनि श्लोका येका। संजयें कुरुनायका। दिधला हातीं ॥१६६०॥
जैसा नेणों केवढा वन्ही। परी गुणाग्रीं ठेऊनी। आणिजे सूर्याची हानी। निस्तरावया ॥१६६१॥
तैसें शब्दब्रह्म अनंत। जालें सवालक्ष भारत। भारताचें शतें सात। सर्वस्व गीता ॥१६६२॥
तयांही सातां शतांचा। इत्यर्थु हा श्लोक शेषींचा। व्यासशिष्य संजयाचा। पूर्णोद्गारु जो ॥१६६३॥
येणें येकेंचि श्लोकें। राहे तेणें असकें। अविद्याजाताचें निकें। जिंतलें होय ॥१६६४॥
ऐसें श्लोक शतें सात। गीतेचीं पदें आंगें वाहत। पदें म्हणों कीं परमामृत। गीताकाशींचें ॥१६६५॥
कीं आत्मराजाचिये सभे। गीते वोडवले हे खांबे। मज श्लोक प्रतिभे। ऐसे येत ॥१६६६॥
कीं गीता हे सप्तशती। मंत्रप्रतिपाद्य भगवती। मोहमहिषा मुक्ति। आनंदली असे ॥१६६७॥
म्हणौनि मनें कायें वाचा। जो सेवकु होईल इयेचा। तो स्वानंदासाम्राज्याचा। चक्रवर्ती करी ॥१६६८॥
कीं अविद्यातिमिररोखें। श्लोक सूर्यातें पैजा जिंकें। ऐसे प्रकाशिले गीतामिषें। रायें श्रीकृष्णें ॥१६६९॥
कीं श्लोकाक्षरद्राक्षलता। मांडव जाली आहे गीता। संसारपथश्रांता। विसंवावया ॥१६७०॥
कीं सभाग्यसंतीं भ्रमरीं। केले ते श्लोककल्हारीं। श्रीकृष्णाख्यसरोवरीं। सासिन्नली हे ॥१६७१॥
कीं श्लोक नव्हती आन। गमे गीतेचें महिमान। वाखाणिते बंदीजन। उदंड जैसे ॥१६७२॥
कीं श्लोकांचिया आवारा। सात शतें करूनि सुंदरा। सर्वागम गीतापुरा। वसों आले ॥१६७३॥
कीं निजकांता आत्मया। आवडी गीता मिळावया। श्लोक नव्हती बाह्या। पसरु का जो ॥१६७४॥
कीं गीताकमळींचे भृंग। कीं हे गीतासागरतरंग। कीं हरीचे हे तुरंग। गीतारथींचे ॥१६७५॥
कीं श्लोक सर्वतीर्थ संघातु। आला श्रीगीतेगंगे आंतु। जे अर्जुन नर सिंहस्थु। जाला म्हणौनि ॥१६७६॥
कीं नोहे हे श्लोकश्रेणी। अचिंत्यचित्तचिंतामणी। कीं निर्विकल्पां लावणी। कल्पतरूंची ॥१६७७॥
ऐसिया शतें सात श्लोकां। परी आगळा येकयेका। आतां कोण वेगळिका। वानावां पां ॥१६७८॥
तान्ही आणि पारठी। इया कामधेनूतें दिठी। सूनि जैसिया गोठी। कीजती ना ॥१६७९॥
दीपा आगिलु मागिलु। सूर्यु धाकुटा वडीलु। अमृतसिंधु खोलु। उथळु कायसा ॥१६८०॥
तैसे पहिले सरते। श्लोक न म्हणावे गीते। जुनीं नवीं पारिजातें। आहाती काई ? ॥१६८१॥
आणि श्लोका पाडु नाहीं। हें कीर समर्थु काई। येथ वाच्य वाचकही। भागु न धरी ॥१६८२॥
जे इये शास्त्रीं येकु। श्रीकृष्णचि वाच्य वाचकु। हें प्रसिद्ध जाणे लोकु। भलताही ॥१६८३॥
येथें अर्थें तेंचि पाठें। जोडे येवढेनि धटें। वाच्यवाचक येकवटें। साधितें शास्त्र ॥१६८४॥
म्हणौनि मज कांहीं। समर्थनीं आतां विषय नाहीं। गीता जाणा हे वाङ्मयी। श्रीमूर्ति प्रभूचि ॥१६८५॥
शास्त्र वाच्यें अर्थें फळे। मग आपण मावळे। तैसें नव्हें हें सगळें। परब्रह्मचि ॥१६८६॥
कैसा विश्वाचिया कृपा। करूनि महानंद सोपा। अर्जुनव्याजें रूपा। आणिला देवें ॥१६८७॥
चकोराचेनि निमित्तें। तिन्ही भुवनें संतप्तें। निववीलीं कळांवतें। चंद्रें जेवीं ॥१६८८॥

कां गौतमाचेनि मिषें। कळिकाळज्वरीतोद्देशें। पाणिढाळु गिरीशें। गंगेंचा केला ॥ १६८९ ॥
तैसें गीतेचें हें दुभतें। वत्स करूनि पार्थातें। दुभिन्नली जगापुरतें। श्रीकृष्ण गाय ॥ १६९० ॥
येथे जीवें जरी नाहाल। तरी हेंचि कीर होआल। नातरी पाठमिषें तिंबाल। जीभचि जरी ॥ १६९१ ॥
तरी लोह एकें अंशें। झगटलिया परीसें। येरीकडे अपैसें। सुवर्ण होय ॥ १६९२ ॥
तैसी पाठाची ते वाटी। श्लोकपाद लावा ना जंव वोठीं। तंव ब्रह्मतेची पुष्टी। येईल आंगा ॥ १६९३ ॥
ना येणेसीं मुख वांकडें। करूनि ठाकाल कानवडें। तरी कानींही घेतां पडे। तेंचि लेख ॥ १६९४ ॥
जे हे श्रवणें पाठें अर्थें। गीता नेदी मोक्षाआरौतें। जैसा समर्थु दाता कोण्हातें। नास्ति न म्हणे ॥ १६९५ ॥
म्हणौनि जाणतया सवा। गीताचि येकी सेवा। काय कराल आघवां। शास्त्रीं येरीं ॥ १६९६ ॥
आणि कृष्णार्जुनीं मोकळी। गोठी चावळिली जे निराळी। ते श्रीव्यासें केली करतळीं। घेवों ये ऐसी ॥ १६९७ ॥
बाळकातें वोरसें। माय जैं जेवऊं बैसे। तैं तया ठाकती तैसे। घांस करी ॥ १६९८ ॥
कां अफाटा समीरणा। आपैतेंपण शाहाणा। केलें जैसें विंजणा। निर्मूनियां ॥ १६९९ ॥
तैसें शब्दें जें न लभे। तें घडूनिया अनुष्टुभें। स्त्रीशूद्रादि प्रतिभे। सामाविलें ॥ १७०० ॥
स्वातीचेनि पाणियें। न होती जरी मोतियें। तरी अंगीं सुंदरांचिये। कां शोभिती तियें ? ॥ १७०१ ॥
नादु वाद्या न येतां। तरी कां गोचरु होता। । फुलें न होतां घेपता। आमोदु केवीं ? ॥ १७०२ ॥
गोडीं न होती पक्वान्नें। तरी कां फावती रसनें ?। दर्पणावीण नयनें। नयनु कां दिसे ? ॥ १७०३ ॥
द्रष्टा श्रीगुरुमूर्ती। न रिगता दृश्यपंथीं। तरी कां ह्या उपास्ती। आकळता तो ? ॥ १७०४ ॥
तैसें वस्तु जें असंख्यात। तया संख्या शतें सात। न होती तरी कोणा येथ। फावों शकतें ? ॥ १७०५ ॥
मेघ सिंधूचें पाणी वाहे। तरी जग तयातेंचि पाहे। कां जे उमप ते नोहें। ठाकतें कोण्हा ॥ १७०६ ॥
आणि वाचा जें न पवे। तें हे श्लोक न होते बरवे। तरी कानें मुखें फावे। ऐसें कां होतें ? ॥ १७०७ ॥
म्हणौनि श्रीव्यासाचा हा थोरु। विश्वा जाला उपकारु। जे श्रीकृष्ण उक्ती आकारु। ग्रंथाचा केला ॥ १७०८ ॥
आणि तोचि हा मी आतां। श्रीव्यासाचीं पदें पाहतां पाहतां। आणिला श्रवणपथा। मऱ्हाठिया ॥ १७०९ ॥
व्यासादिकांचे उन्मेख। राहाटती जेथ साशंक। तेथ मीही रंक येक। चावळी करीं ॥ १७१० ॥
परी गीता ईश्वरु भोळा। ले व्यासोक्तिकुसुममाळा। तरी माझिया दुर्वादळा। ना न म्हणे कीं ॥ १७११ ॥
आणि क्षीरसिंधूचिया तटा। पाणिया येती गजघटा। तेथ काय मुरकुटा। वारिजत असे ? ॥ १७१२ ॥
पांख फुटे पांखिरूं। नुडे तरी नभींच स्थिरू। गगन आक्रमी सत्वरू। तो गरुडही तेथ ॥ १७१३ ॥
राजहंसाचें चालणें। भूतळीं जालिया शाहाणें। आणिकें काय कोणें। चालावेचिना ? ॥ १७१४ ॥
जी आपुलेनि अवकाशें। अगाध जळ घेपे कलशें। चुळीं चूळपण ऐसें। भरूनि न निघे ? ॥ १७१५ ॥
दिवटीच्या आंगीं थोरी। तरी ते बहु तेज धरी। वाती आपुलिया परी। आणीच कीं ना ? ॥ १७१६ ॥
जी समुद्राचेनि पैसें। समुद्रीं आकाश आभासे। थिल्लरीं थिल्लराऐसें। बिंबेचि पैं ॥ १७१७ ॥
तेवीं व्यासादिक महामती। वावरों येती इये ग्रंथीं। मा आम्ही ठाकों हे युक्ति। न मिळे कीर ? ॥ १७१८ ॥
जिये सागरीं जळचरें। संचरती मंदराकारें। तेथ देखोनि शफरें येरें। पोहों न लाहती ? ॥ १७१९ ॥
अरुण आंगाजवळिके। म्हणौनि सूर्यातें देखें। मा भूतळींची न देखे। मुंगी काई ? ॥ १७२० ॥
यालागीं आम्हां प्राकृतां। देशिकारें बंधें गीता। म्हणणें हें अनुचिता। कारण नोहे ॥ १७२१ ॥
आणि बापु पुढां जाये। ते घेत पाउलाची सोये। बाळ ये तरी न लाहे। पावों कायी ? ॥ १७२२ ॥
तैसा व्यासाचा मागोवा घेतु। भाष्यकारातें वाट पुसतु। अयोग्यही मी न पवतु। कें जाईन ? ॥ १७२३ ॥
आणि पृथ्वी जयाचिया क्षमा। नुबगे स्थावर जंगमा। जयाचेनि अमृतें चंद्रमा। निववी जग ॥ १७२४ ॥

जयाचें आंगिक असिकें। तेज लाहोनि अर्कें। आंधाराचें सावाइकें। लोटिजत आहे ॥ १७२५ ॥
समुद्रा जयाचें तोय। तोया जयाचें माधुर्य। माधुर्या सौंदर्य। जयाचेनि ॥ १७२६ ॥
पवना जयाचें बळ। आकाश जेणें पघळ। ज्ञान जेणें उज्वळ। चक्रवर्ती ॥ १७२७ ॥
वेद जेणें सुभाष। सुख जेणें सोल्लास। हें असो रूपस। विश्व जेणें ॥ १७२८ ॥
तो सर्वोपकारी समर्थु। सद्‌गुरु श्रीनिवृत्तिनाथु। राहाटत असे मजही आंतु। रिघोनियां ॥ १७२९ ॥
आतां आयती गीता जगीं। मी सांगें मऱ्हाठिया भंगीं। येथ कें विस्मयालागीं। ठावो आहे ॥ १७३० ॥
श्रीगुरुचेनि नांवें माती। डोंगरीं जयापासीं होती। तेणें कोळियें त्रिजगतीं। येकवद केली ॥ १७३१ ॥
चंदनें वेधलीं झाडें। जालीं चंदनाचेनि पाडें। वसिष्ठें मांनिली कीं भांडे। भानूसीं शाटी ॥ १७३२ ॥
मा मी तव चित्ताथिला। आणि श्रीगुरु ऐसा दादुला। जो दिठीवेनि आपुला। बैसवी पदीं ॥ १७३३ ॥
आधींचि देखणी दिठी। वरी सूर्य पुरवी पाठी। तैं न दिसे ऐसी गोठी। केंही आहे ? ॥ १७३४ ॥
म्हणौनि माझें नित्य नवे। श्वासोश्वासही प्रबंध होआवे। श्रीगुरुकृपा काय नोहे। ज्ञानदेवो म्हणे ॥ १७३५ ॥
याकारणें मियां। श्रीगीतार्थु मऱ्हाठिया। केला लोकां यया। दिठीचा विषो ॥ १७३६ ॥
परी मऱ्हाठे बोलरंगें। कवळितां पैं गीतांगें। तैं गातयाचेनि पांगें। येकाढतां नोहे ॥ १७३७ ॥
म्हणौनि गीता गावों म्हणे। तें गाणिवें होतीं लेणें। ना मोकळे तरी उणें। गीताही आणित ॥ १७३८ ॥
सुंदर आंगीं लेणें न सूये। तैं तो मोकळा शृंगारु होये। ना लेइलें तरी आहे। तैसें कें उचित ? ॥ १७३९ ॥
कां मोतियांची जैसी जाती। सोनयाही मान देती। नातरी मानविती। अंगेंचि सडीं ॥ १७४० ॥
नाना गुंफिलीं कां मोकळीं। उणीं न होती परीमळीं। वसंतागमींचीं वाटोळीं। मोगरीं जैसीं ॥ १७४१ ॥
तैसा गाणिवेतें मिरवी। गीतेवीणही रंगु दावीं। तो लाभाचा प्रबंधु ओंवी। केला मियां ॥ १७४२ ॥
तेणें आबालसुबोधें। ओवीयेचेनि प्रबंधें। ब्रह्मरससुस्वादें। अक्षरें गुंथिलीं ॥ १७४३ ॥
आतां चंदनाच्या तरुवरीं। परीमळालागीं फुलवरीं। पारुखणें जियापरी। लागेना कीं ॥ १७४४ ॥
तैसा प्रबंधु हा श्रवणीं। लागतखेंवो समाधि आणी। ऐकिलियाही वाखाणी। काय व्यसन न लवी ? ॥ १७४५ ॥
पाठ करितां व्याजें। पांडित्यें येती वेषजे। तैं अमृतातें नेणिजे। फावलिया ॥ १७४६ ॥
तैसेंनि आइतेपणें। कवित्व जालें हें उपेणें। मनन निदिध्यास श्रवणें। जिंतिलें आतां ॥ १७४७ ॥
हे स्वानंदभोगाची सेल। भलतयसीचि देईल। सर्वेंद्रियां पोषवील। श्रवणाकरवीं ॥ १७४८ ॥
चंद्रातें आंगवणें। भोगूनि चकोर शाहाणे। परी फावे जैसें चांदिणें। भलतयाही ॥ १७४९ ॥
तैसें अध्यात्मशास्त्रीं यिये। अंतरंगचि अधिकारिये। परी लोकु वाक्‌चातुर्यें। होईल सुखिया ॥ १७५० ॥
ऐसें श्रीनिवृत्तिनाथाचें। गौरव आहे जी साचें। ग्रंथु नोहे हें कृपेचें। वैभव तिये ॥ १७५१ ॥
क्षीरसिंधु परिसरीं। शक्तीच्या कर्णकुहरीं। नेणों कैं श्रीत्रिपुरारीं। सांगितलें जें ॥ १७५२ ॥
तें क्षीरकल्लोळाआंतु। मकरोदरीं गुप्तु। होता तयाचा हातु। पैठें जालें ॥ १७५३ ॥
तो मत्स्येंद्र सप्तशृंगीं। भग्नावयवा चौरंगी। भेटला कीं तो सर्वांगीं। संपूर्ण जाला ॥ १७५४ ॥
मग समाधि अव्युत्थया। भोगावी वासना यया। ते मुद्रा श्रीगोरक्षराया। दिधली मीनीं ॥ १७५५ ॥
तेणें योगाब्जिनीसरोवरु। विषयविध्वंसैकवीरु। तिये पदीं कां सर्वेश्वरु। अभिषेकिला ॥ १७५६ ॥
मग तिहीं तें शांभव। अद्वयानंदवैभव। संपादिलें सप्रभव। श्रीगहिनीनाथा ॥ १७५७ ॥
तेणें कळिकळितु भूतां। आला देखोनि निरुता। ते आज्ञा श्रीनिवृत्तिनाथा। दिधली ऐसी ॥ १७५८ ॥
ना आदिगुरु शंकरा-। लागोनि शिष्यपरंपरा। बोधाचा हा संसरा। जाला जो आमुतें ॥ १७५९ ॥
तो हा तूं घेऊनि आघवा। कळीं गिळितयां जीवां। सर्व प्रकारीं धांवा। करीं पां वेगीं ॥ १७६० ॥

आधींच तंव तो कृपाळु। वरी गुरुआज्ञेचा बोलू। जाला जैसा वर्षाकाळू। खवळणें मेघां ॥ १७६१॥
मग आर्ताचेनि वोरसें। गीतार्थग्रंथनमिसें। वर्षला शांतरसें। तो हा ग्रंथु ॥ १७६२॥
तेथ पुढां मी बापिया। मांडला आर्ती आपुलिया। कीं यासाठीं येवढिया। आणिलों यशा ॥ १७६३॥
एवं गुरुक्रमें लाधलें। समाधिधन जें आपुलें। तें ग्रंथें बोधौनि दिधलें। गोसावी मज ॥ १७६४॥
वांचूनि पढे ना वाची। ना सेवाही जाणें स्वामीची। ऐशिया मज ग्रंथाची। योग्यता कें असे ? ॥ १७६५॥
परी साचचि गुरुनाथें। निमित्त करूनि मातें। प्रबंधव्याजें जगातें। रक्षिलें जाणा ॥ १७६६॥
तऱ्ही पुरोहितगुणें। मी बोलिलों पुरें उणें। तें तुम्हीं माउलीपणें। उपसाहिजो जी ॥ १७६७॥
शब्द कैसा घडिजे। प्रमेयीं कैसें पां चढिजे। अळंकारु म्हणिजे। काय तें नेणें ॥ १७६८॥
सायिखडेयाचें बाहुलें। चालवित्या सूत्राचेनि चाले। तैसा मातें दावीत बोले। स्वामी तो माझा ॥ १७६९॥
यालागीं मी गुणदोष-। विषीं क्षमाविना विशेष। जे मी संजात ग्रंथलों देख। आचार्यें कीं ॥ १७७०॥
आणि तुम्हां संतांचिये सभे। जें उणीवेंसी ठाके उभें। तें पूर्ण नोहे तरी तैं लोभें। तुम्हांसीचि कोपें ॥ १७७१॥
सिवतलियाही परीसें। लोहत्वाचिये अवदसे। न मुकिजे आयसें। तैं कवणा बोलु ॥ १७७२॥
वोहळें हेंचि करावें। जे गंगेचें आंग ठाकावें। मगही गंगा जरी नोहावें। तैं तो काय करी ? ॥ १७७३॥
म्हणौनि भाग्ययोगें बहुवें। तुम्हां संतांचें मी पाये। पातलों आतां कें लाहे। उणें जगीं ॥ १७७४॥
अहो जी माझेनि स्वामी। मज संत जोडुनि तुम्हीं। दिधलेति तेणें सर्वकामीं। परीपूर्ण जालों ॥ १७७५॥
पाहा पां मातें तुम्हां सांगडें। माहेर तेणें सुरवाडें। ग्रंथाचें आळियाडें। सिद्धी गेलें ॥ १७७६॥
जी कनकाचें निखळ। वोतूं येईल भूमंडळ। चिंतारत्नीं कुळाचळ। निर्मूं येती ॥ १७७७॥
सातांही हो सागरांतें। सोपें भरितां अमृतें। दुवाड नोहे तारांतें। चंद्र करितां ॥ १७७८॥
कल्पतरूचे आराम। लावितां नाहीं विषम। परी गीतार्थाचें वर्म। निवडूं न ये ॥ १७७९॥
तो मी येकु सर्व मुका। बोलोनि मऱ्हाठिया भाखा। करी डोळेवरी लोकां। घेवों ये ऐसें जें ॥ १७८०॥
हा ग्रंथसागरु येव्हढा। उतरोनि पैलीकडा। कीर्तिविजयाचा धेंडा। नाचे जो कां ॥ १७८१॥
गीतार्थाचा आवारु। कलशेंसीं महामेरु। रचूनि मार्जी श्रीगुरु-। लिंग जें पूजीं ॥ १७८२॥
गीता निष्कपट माय। चुकोनि तान्हें हिंडे जें वाय। तें मायपूता भेटी होय। हा धर्म तुमचा ॥ १७८३॥
तुम्हां सज्जनांचें केलें। आकळुनी जी मी बोलें। ज्ञानदेव म्हणे थेंकुलें। तैसें नोहें ॥ १७८४॥
काय बहु बोलों सकळां। मेळविलों जन्मफळा। ग्रंथसिद्धीचा सोहळा। दाविला जो हा ॥ १७८५॥
मियां जैसजैसिया आशा। केला तुमचा भरंवसा। ते पुरवूनि जी बहुवसा। आणिलों सुखा ॥ १७८६॥
मजलागीं ग्रंथाची स्वामी। दुजीं सृष्टी जे हे केली तुम्ही। तें पाहोनि हांसों आम्हीं। विश्वामित्रातेंही ॥ १७८७॥
जे असोनि त्रिशंकुदोषें। धातयाही आणावें वोसें। तें नासतें कीजे कीं ऐसें। निर्मावें नाहीं ॥ १७८८॥
शंभू उपमन्युचेनि मोहें। क्षीरसागरूही केला आहे। येथ तोही उपमे सरी नोहे। जे विषगर्भ कीं ॥ १७८९॥
अंधकारु निशाचरां। गिळितां सूर्यें चराचरां। धांवा केला तरी खरा। ताउनी कीं तो ॥ १७९०॥
तातलियाही जगाकारणें। चंद्रें वेंचिलें चांदणें। तया सदोषा केवीं म्हणे। सारिखें हें ॥ १७९१॥
म्हणौनि तुम्हीं मज संतीं। ग्रंथरूप जो हा त्रिजगतीं। उपयोग केला तो पुढती। निरुपम जी ॥ १७९२॥
किंबहुना तुमचें केलें। धर्मकीर्तन हें सिद्धी नेलें। येथ माझें जी उरलें। पाईकपण ॥ १७९३॥
आतां विश्वात्मकें देवें। येणें वाग्यज्ञें तोषावें। तोषोनि मज द्यावें। पसायदान हें ॥ १७९४॥
जे खळांची व्यंकटी सांडो। तयां सत्कर्मीं रती वाढो। भूतां परस्परें पडो। मैत्र जीवाचें ॥ १७९५॥
दुरिताचें तिमिर जावो। विश्व स्वधर्मसूर्यें पाहो। जो जें वांछील तो तें लाहो। प्राणिजात ॥ १७९६॥

वर्षत सकळमंगळीं। ईश्वर निष्ठांची मांदियाळी। अनवरत भूमंडळीं। भेटतु या भूतां ॥ १७९७॥
चलां कल्पतरूंचे अरव। चेतना चिंतामणीचें गांव। बोलते जे अर्णव। पीयूषाचे ॥ १७९८॥
चंद्रमे जे अलांछन। मार्तंड जे तापहीन। ते सर्वांही सदा सज्जन। सोयरे होतु ॥ १७९९॥
किंबहुना सर्वसुखीं। पूर्ण होऊनि तिहीं लोकीं। भजिजो आदिपुरुखीं। अखंडित ॥ १८००॥
आणि ग्रंथोपजीविये। विशेषीं लोकीं इयें। दृष्टादृष्ट विजयें। होआवें जी ॥ १८०१॥
तेथ म्हणे श्रीविश्वेशरावो। हा होईल दानपसावो। येणें वरें ज्ञानदेवो। सुखिया झाला ॥ १८०२॥
ऐसें युगीं परी कळीं। आणि महाराष्ट्रमंडळीं। श्रीगोदावरीच्या कूलीं। दक्षिणलिंगीं ॥ १८०३॥
त्रिभुवनैकपवित्र। अनादि पंचक्रोश क्षेत्र। जेथ जगाचें जीवनसूत्र। श्रीमहालया असे ॥ १८०४॥
तेथ यदुवंशविलासु। जो सकळकळानिवासु। न्यायातें पोषी क्षितीशु। श्रीरामचंद्रु ॥ १८०५॥
तेथ महेशान्वयसंभूतें। श्रीनिवृत्तिनाथसुतें। केलें ज्ञानदेवें गीते। देशीकार लेणें ॥ १८०६॥
एवं भारताच्या गांवीं। भीष्मनाम प्रसिद्ध पर्वीं। श्रीकृष्णार्जुनीं बरवी। गोठी जे केली ॥ १८०७॥
जें उपनिषदांचें सार। सर्व शास्त्रांचें माहेर। परमहंसीं सरोवर। सेविजे जें ॥ १८०८॥
तियें गीतेचा कलशु। संपूर्ण हा अष्टादशु। म्हणे निवृत्तिदासु। ज्ञानदेवो ॥ १८०९॥
पुढती पुढती पुढती। इया ग्रंथपुण्यसंपत्ती। सर्वसुखीं सर्वभूतीं। संपूर्ण होईजे ॥ १८१०॥
शके बाराशतें बारोत्तरें। तैं टीका केली ज्ञानेश्वरें। सच्चिदानंदबाबा आदरें। लेखकु जाहला ॥ १८११॥
इति श्री ज्ञानदेवविरचितायां भावार्थदीपिकायां अष्टादशोध्यायः ॥

श्रीशके पंधराशें साहोत्तरीं। तारणनामसंवत्सरीं। एकाजनार्दनें अत्यादरीं। गीता-ज्ञानेश्वरी प्रतिशुद्ध केली ॥ १॥
ग्रंथ पूर्वीच अतिशुद्ध। परी पाठांतरीं शुद्ध अबद्ध। तो शोधूनियां एवंविध। प्रतिशुद्ध सिद्धज्ञानेश्वरी ॥ २॥
नमो ज्ञानेश्वरा निष्कलंका। जयाची गीतेची वाचितां टीका। ज्ञान होय लोकां। अतिभाविकां ग्रंथार्थियां ॥ ३॥
बहुकाळपर्वणी गोमटी। भाद्रपदमास कपिलाषष्ठी। प्रतिष्ठानीं गोदातटीं। लेखनकामाठी संपूर्ण जाली ॥ ४॥
ज्ञानेश्वरीपाठीं। जो ओंवी करील मऱ्हाटी। तेणें अमृताचे ताटीं। जाण नरोटी ठेविली ॥ ५॥
॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥
॥ शुभं भवतु ॥
॥ श्री परमात्मने नमः ॥
॥ तत्सत् ब्रह्मार्पणमस्तु ॥

Encoded and proofread by
Chhaya Deo, Sharad Deo, and Vishwas Bhide.
Assisted by
Sunder Hattangadi, Joshi, and Shree Devi Kumar.
